जब भारत जागा

उमाशंकर

जब भारत जागा

उमाशंकर

[illegible]

[illegible]

[illegible]
੧੧.੧੧.62

जब भारत जागा

* * *

स्वाधीनता की भावना से ओतप्रोत मौलिक उपन्यास

जब भारत जागा

लेखक

उमाशंकर

वोरा एण्ड कंपनी,
पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउण्ड बिल्डिंग, बंबई २.



●

प्रथम संस्करण : १९५९

●

मूल्य : रु० ३·५०

●

प्रकाशक :
के. के. वोरा,
वोरा एण्ड कम्पनी,
पब्लिशर्स प्रा० लि०,
३, राउंड बिल्डिंग,
कालबादेवी रोड,
बंबई २.

●

मुद्रक :
मुहम्मद शाकिर,
सहयोगी प्रेस,
१४१, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद ३.

अपने प्रिय बहनोई

श्री राजेन्द्रनाथ सिन्हा

को

सप्रेम भेंट

दो शब्द

जीवन क्यों और किस लिए बनाया गया, कहना कठिन है। फिर भी विद्वानों और दार्शनिकों ने नाना प्रकार के कारण बतलाये हैं। जीवन का प्रत्यक्ष रूप वास्तविक है या परोक्ष, निर्णयात्मक रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु जो प्रत्यक्ष है उसमें कर्म की सभी ने प्रधानता स्वीकार की है। योगिराज कृष्ण ने कर्म की व्याख्या करते-करते गीता को जन्म दे डाला, परन्तु अन्त में 'मा फलेषु कदाचन' के रहस्य ने कर्मण्यता की नींव को डगमगा दिया। भाग्य प्रधान हो गया और कर्म गौण।

*

आज संसार ने अपने को दो भागों में बाँट रखा है। भाग्य को प्रधान मानकर कर्त्तव्यों के प्रति प्रयत्नशील रहनेवाला

समुदाय ईश्वर-भक्त है तथा कर्म को सर्वोपरि कहनेवाला ईश्वर-विरोधी। प्रश्न उठा सुख और शान्ति का। परन्तु जनसाधारण का ही जीवन पिसता हुआ दिखाई पड़ा। गरीब इधर भी कोस रहा था, उधर भी। न उसे ईश्वर पर आस्था रही, न कर्म पर विश्वास। अब तीसरी वस्तु ढूँढ़ने की आवश्यकता है। देखना है, किस दिन प्राप्त होती है। सर्वसाधारण उसी की तलाश में है।

*

इस पुस्तक में आये हुए काल और समाज से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है तथा विभिन्न चित्रण मेरे निज के अनुभव हैं। रामखेलावन की करुण कथा, जिसे मैं अब तक नहीं भूल सका हूँ, सम्भवतः पाठकगण भी उसे पढ़कर नहीं भुला सकेंगे।

*

अन्त में

अपने प्रिय साथी श्री लक्ष्मीनारायणजी पाण्डेय के सहयोग का अत्यधिक आभारी हूँ।

३५/१९६, खास बाजार, —उमाशंकर
कानपुर

जब भारत जागा

१

लोगों ने उसे सदैव बाँसुरी बजाते ही देखा है। बढ़ी हुई छोटी-छोटी दाढ़ी पर बिखरे हुए बाल। भरे लाल-लाल गालों पर बड़ी-बड़ी आँखें; छरहरा किन्तु सुडौल बदन। पीठ पर एक बड़ा-सा मोटे कपड़े का थैला, जिसकी पेटियाँ कन्धों से कसी रहती हैं। पहनावा है खाकी पतलून और बनियाइन।

कभी-कभी उसके साथ एक स्त्री भी रहती है। नाटी-सी गोरी, सुफेद। उसके हाथ में एक लकड़ी का डब्बा रहता है, जिस पर लिखा हुआ है—'समाज बदलने के सहायतार्थ'। चौराहों पर, गलियों में, स्कूल या कालिजों के सामने, जहाँ भी आदेश देती है वह बाँसुरी बजाने लगता है। वह असाधारण बाँसुरी-वादक है। उसकी बाँसुरी में जादू है। लोग सुनते ही बरबस उधर खिंच जाते हैं। न वह किसी को बुलाता है और न किसी को सुनाता है। वह तो केवल उस स्त्री के आदेश का पालन करता है। परन्तु उसके बाँसुरी पर उँगली फेरते ही भीड़ इकट्ठी होने लगती है और कभी-कभी गाड़ियों और मोटरों का निकलना तो दूर, आदमियों का एक ओर से दूसरी ओर आना-जाना दूभर हो जाता है। जब तक वह स्त्री उससे बन्द करने को नहीं कहती, वह एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, तीसरे के बाद चौथा, और चौथे के बाद पाँचवाँ गीत बजाये चला जाता

है। और ज्योंही वह कहती है, 'बन्द करो मित्र' वह बन्द कर देता है। तब वह स्त्री डब्बे को लेकर सबके सामने घूमती है—पैसों की सहायता के लिए।

इस स्त्री का उस व्यक्ति के साथ कौन-सा सम्बन्ध है, कोई नहीं जानता। वह इसके साथ क्यों रहती है? बीच-बीच में इसका साथ छोड़कर कहाँ चली जाती है? इन मिले हुए पैसों से कौन-सा समाज का कार्य करती है—आदि बातें कुतूहल से खाली नहीं। परन्तु किसी ने आज तक इन प्रश्नों को इन लोगों से पूछा नहीं। कुछ लोगों की धारणा है कि वह पुरुष कुछ खब्ती है और यह स्त्री उसे खिला-पिलाकर बाँसुरी बजवाती है और समाज के नाम पर जनता से पैसे ठगती है। कुछ लोग इन दोनो को पति-पत्नी समझते हैं। बहुत-से लोगों के मुँह यह भी सुना गया है कि ये सरकार के जासूस हैं, जो स्थान-स्थान पर घूमकर, विशेष विषयों का पता लगाया करते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि नगर में किसी भी व्यक्ति को इनके विषय में ठीक-ठीक जानकारी नहीं।

कभी ये सड़क के फुटपाथों पर सोते हुए दिखाई पड़ते हैं, तो कभी पार्क में। कभी गंगा की बालू पर, तो कभी मजदूरों या भंगियों की बस्तियों में। हर दूसरे या तीसरे महीने ये हफ्ते-दो हफ्ते के लिए कहीं बाहर भी चले जाते हैं। कहाँ जाते हैं, कोई नहीं जानता और न जानने का प्रयत्न ही करता है। हाँ, इतना अवश्य लोगों को आपस में बातें करते हुए सुना गया है, 'अरे भाई! आजकल वह बाँसुरीवाला नहीं दिखाई पड़ता। बाँसुरी क्या बजाता है, गजब ढाता है।'

सारे नगर में बाँसुरीवाले की धूम है। लोग उसकी बाँसुरी सुनने के लिए सदैव लालायित रहते हैं। कभी-कभी मोटरोंवाले सेठ उसे अपने घर चलने के लिए कहते हैं, पर वह इनकार कर देता है। वह अपनी इच्छाओं का मालिक है। वह किसी के सामने हाथ नहीं फैलाता और न दिये हुए पैसों को लेने से नाही ही करता है। वह किसी के कहने पर बाँसुरी भी नहीं बजाता। वह दूसरों से बातें कम करता है, पर जब भी कभी करता है तो सुननेवाले दंग रह जाते हैं।

उस स्त्री के और इसके स्वभाव में बड़ी विभिन्नता है। वह बाँसुरी बजवाकर पैसे माँगा करती है, जब कि यह पैसों के लिए हाथ तक नहीं फैलाता। विचारों में इतनी असमानता होते हुए भी दोनो कैसे साथ-साथ रहते हैं, यह एक अजीब-सी बात है।

जाड़ों के दिन थे। धूप अब अच्छी लगने लगी थी। लगभग दो या ढाई का समय होगा। बाँसुरीवाला बालिका विद्यालय के सामने, सड़क के किनारे, घास में बैठकर बाँसुरी पर एक मधुर-सी ध्वनि बजा रहा था। एक लड़की सुन्दर-सी, बीस-इक्कीस वर्ष की, साइकिल लिये विद्यालय के फाटक से निकली। वह फाटक के बाहर आयी ही थी कि उसे बाँसुरी की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। उसे यह समझते देर न लगी कि बाँसुरी उसी पागल द्वारा बजाई जा रही है। कुछ क्षणों तक वह वहीं खड़ी-खड़ी सुनती रही, तदुपरान्त विद्यालय के अन्दर लौट गई।

प्रधान अध्यापिका के कमरे की चिक को उठाते हुए उसने पूछा, 'अन्दर आ सकती हूँ ?'

'नन्दा ! आओ !!' प्रधान अध्यापिका ने अनुमति दी।

'कुछ दिनों पहले मैंने आपसे एक पागल बाँसुरीवाले की प्रशंसा की थी, सम्भवतः आपको स्मरण होगा ? आज संयोग से वह गेट के बाहर ही बाँसुरी बजा रहा है। कहिए तो बुला लूँ। आधे घंटे के लिए एक सुन्दर प्रोग्राम हो जायेगा और सारी लड़कियाँ भली-भाँति उसकी बाँसुरी भी सुन लेंगी। हम लोगों की, विशेषकर मेरी तो बड़ी ही इच्छा है। जैसी आप आज्ञा दें।'

कुछ सोचती हुई प्रधान अध्यापिका बोली, 'अच्छा बुला लो। मैं घंटी बजवाकर लड़कियों को हाल में इकट्ठा होने के लिए सूचना भेजे देती हूँ। तुम उसे वहीं लेकर आ जाना।'

पहले नन्दा ने सोचा, किसी चपरासी को भेजकर बुला लें, किन्तु तत्काल उसके ध्यान में आया—सम्भवतः वह चपरासी के बुलाने पर न आये। ऐसे लोग अधिकतर स्वाभिमानी होते हैं। वह स्वयं दौड़ी-दौड़ी

बाहर आयी और भीड़ को हटाती हुई उसके पास पहुँचकर बोली, 'यदि आपको कोई कष्ट न हो तो हमारे स्कूल में चलें। प्रिन्सिपल साहिबा ने आपको बुलाया है।'

बाँसुरीवाले ने बाँसुरी बन्द कर दी। उसने नन्दा की ओर देखा और बगल में बैठी उसी स्त्री की ओर संकेत कर दिया।

नन्दा उसका आशय समझ गई। उसने वही बात उस स्त्री से भी कही। वह सोचती रही, फिर बाँसुरीवाले की ओर देखकर बोली, 'चलो, यहाँ भी हो आयें। इनको जो कुछ दोगे उससे अधिक ही पाओगे, न्यून नहीं। विशेषकर हमारे कार्यों में इनका हाथ बँटाना अधिक आवश्यक है। और तभी हमें लक्ष्य की प्राप्ति भी हो सकेगी।'

लड़कियाँ हाल में आकर बैठ चुकी थीं। अध्यापिकाओं का समुदाय भी लगभग आ चुका था। शेष दो-एक जो बच रही थीं वे इस विद्यालय की बड़ी-बूढ़ियों में थीं। न उन्हें संगीत से प्रेम था, न सभा-व्याख्यानों से। उन्हें तो दूसरों की बुराई सुनने और सुनाने ही से फुर्सत नहीं मिलती।

नन्दा उन दोनो को साथ लेकर आयी। प्रिन्सिपल को सूचना दी गई। उन्होंने आते ही बड़े आदर से दोनों को मंच पर बिठाया और स्वयं भी कुर्सी खींचकर एक ओर बैठ गईं।

नन्दा ने मंच पर खड़े होकर कहा, 'लगभग पाँच या छह महीनों से, यदि मेरी धारणा गलत न हो, तो आप और आपके साथ जो महिला बैठी हैं, हमारे नगर में आये हुए हैं। नगर का कोई ऐसा भाग न होगा जहाँ आपकी बाँसुरी गूँजी न हो। वास्तव में आपकी बाँसुरी में एक आकर्षण है। आप एक ऊँचे कलाकार हैं। मैंने भी एक-दो बार आपकी बाँसुरी सड़कों पर बजते सुनी है। कभी मैंने आपके विषय में सोचा भी है, किन्तु किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकी हूँ। संयोग से अभी-अभी गेट पर बाँसुरी बजते सुनकर मैंने प्रिन्सिपल महोदया से इस आयोजन के लिए अनुरोध किया और उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया और इससे भी अधिक हर्ष की बात तो यह है कि केवल मेरे एक बार कहने पर ही

आप यहाँ बाँसुरी बजाने चले भी आये। अब मैं आप सबकी ओर से प्रार्थना करूँगी कि आप अपनी कला का हमें रसास्वादन करायें।' यह कहकर नन्दा बैठ गई।

बाँसुरीवाले ने एक बार उस स्त्री की ओर देखा और कुर्सी से उठकर मेज पर पालथी मारकर बैठ गया। फिर उसने बड़े करुण स्वर में बाँसुरी पर एक गीत सुनाया। इस ध्वनि में एक टीस थी। शायद यह उसके हृदय की पीड़ा हो, ऐसा अनुमान वहाँ बैठी हुई महिलाओं ने लगाया। परन्तु यह व्यथा कैसी ? क्यों है ? इसका किसे ज्ञान था ?

गीत समाप्त करके बाँसुरीवाला बोला, 'मुझे आदेश दिया गया है,' यह संकेत उसी स्त्री के लिए था 'कि मैं आपके सम्मुख कुछ कहूँ। मैं क्या, सभी प्राणी नियति के हाथ के चक्र हैं। वह जिधर चाहे, जिस प्रकार चाहे, हम सबको घुमा सकती है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि हम अपने कर्त्तव्य-मार्ग से विमुख हों, हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जायें। हमारे कर्म-क्षेत्र की सीमा नापी नहीं जा सकती। वह जितना विस्तृत है, उतना ही उज्ज्वल। किन्तु साथ ही एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या इस सीमा-रहित कर्मक्षेत्र में हम अपने सारे कर्त्तव्यों का एक साथ पालन करते हुए आगे बढ़ सकेंगे ? इसका उत्तर यदि आप किसी राजनीति के विद्यार्थी से पूछें तो वह कहेगा—नहीं। और उसका ऐसा कहना यथार्थ भी है। हम अपने सारे कर्त्तव्यों का पालन एक साथ नहीं कर सकते। अतः प्रथम हमें उन कर्त्तव्यों को ही देखना है जो हमारे लिए आवश्यक और अनिवार्य हैं।'

हाल में निस्तब्धता थी। उसने बात को मोड़ते हुए आगे कहा, 'तो अब आप एक प्रश्न यह भी पूछ सकती हैं कि '४२ की क्रान्ति के समय देश के बड़े-बड़े नेताओं ने विद्यार्थियों से क्यों अपील की थी कि देश की आजादी के हेतु प्रत्येक को मरना है ? और प्रत्येक का यही प्रथम और परम कर्त्तव्य है। यद्यपि सभी जानते हैं कि विद्यार्थियों का एकमात्र कर्त्तव्य है विद्या का अध्ययन करना। लेकिन अगर आप ध्यान से सोचें तो इस

प्रश्न में यथार्थता है। देश और समाज दो ऐसे वृक्ष हैं जिनकी जड़ों में मानवता सुरक्षित रहती है। यदि ये दोनो वृक्ष गिर पड़ें तो मानवता का अस्तित्व ही मिट जाये। पर ऐसा होता नहीं। इन वृक्षों को सींचने के लिए एक-न-एक समुदाय सदैव तत्पर ही रहता है। इसलिए जब देश और समाज पर संकट आते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति का यह धर्म हो जाता है कि वह चाहे जिस परिस्थिति में हो. जिस काम में हो, सब छोड़कर इसकी रक्षा के लिए तन-मन-धन से जुट जाये।'

जरा रुकता हुआ बाँसुरीवाला आगे बोला, 'बड़े सौभाग्य से मुझे आज आप लोगों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला है। सोचता हूँ कुछ और सुनाऊँ और कुछ आप से भी सुनूँ, परन्तु....हाँ, एक बात मुझे स्मरण हो आयी। एक दिन रात को जब मैं परमठ से लौट रहा था तो डी० ए० वी० कालेज के होस्टल के समीप दो विद्यार्थियों को आपस में बातें करते हुए सुना। एक दूसरे से पूछ रहा था—मान लो यार, यदि सरकार जनता की आवश्यकताओं को पूरा न कर स्वयं लूटती-खाती हो तब....'

नन्दा ने बीच में चिल्लाकर कहा, 'उस सरकार को उलट देना चाहिए।'

'और यदि उलटने की शक्ति न हो, तो ?'

'तब शक्तिशाली बनने का प्रयत्न करना चाहिए।' नन्दा का उत्तर था।

बाँसुरीवाले ने नन्दा को ओर ध्यान से देखा, 'क्या समाज नहीं बदल सकता ?'

'समाज बदलने का ही तो दूसरा नाम सरकार बदलना है महाशय !' हाल तालियों की पड़पड़ाहट से गूँज उठा।

'तो इसके....'

'बन्द करो मित्र ! बहुत देर हो गई।' उस महिला ने टोका।

'अच्छा। अब आज्ञा दीजिए। मुझे आदेश मिला है कि मैं अपनी

बातचीत बन्द करूँ ।' उसने हाथ जोड़े।

वह मेज से उतरने ही वाला था कि हाल के कोने से एक लड़की बोली, 'महाशयजी, चलते-चलते एक गीत तो सुनाते जाइए।'

'यह मैं कर सकता हूँ।' उसने बड़े ऊँचे स्वर से वन्देमातरम् की धुन बजायी।

गीत समाप्त होते ही वह महिला लकड़ी के डब्बे को लेकर सामने खड़ी हो गई। डब्बा पैसों और रुपयों से भर गया। नन्दा वहीं बगल में खड़ी-खड़ी उस पागल बाँसुरीवाले को देख रही थी।

प्रधान अध्यापिका हाथ जोड़ती हुई उस महिला से बोली, 'आप लोगों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आप रहती कहाँ हैं?'

'हम लोगों के पास घर-द्वार नहीं है, प्रिन्सिपल महोदया, और न उसकी चिन्ता ही है। जहाँ सो जाते हैं, वहीं घर है।' उसने हाथ जोड़े, 'अब आज्ञा दीजिए।' वह बाँसुरीवाले को साथ लेकर चल दी।

किसी के कुछ समझ में नहीं आया कि मामला क्या है।

नन्दा को अपने साथ आते देखकर बाँसुरीवाले ने पूछा, 'आपका शुभ नाम?'

'मुझे नन्दा कहते हैं।'

'आप इसी विद्यालय में पढ़ती हैं?'

'जी हाँ!'

'किस कक्षा में?'

'बी० ए० के अन्तिम वर्ष में।'

फाटक के बाहर आने पर नन्दा ने विनती के स्वर में कहा, 'आपसे एक बात कहनी थी।'

'कहिए।'

'आपको मैं अपने घर ले चलना चाहती हूँ।'

'मैं किसी के घर नहीं जाता नन्दा देवी।'

'क्यों? मेरे घर भी नहीं चल सकते?' नन्दा का प्रश्न बेतुका था।

बाँसुरीवाला मुस्कराया, 'क्या आपके घर जाने में मेरे सिद्धान्तों का हनन नहीं होगा ? क्षमा कीजिए, मैं किसी के घर नहीं जाता । आप शायद उधर जायेंगी । हम लोगों को बिरहना रोड जाना है । अच्छा नमस्ते !'

नन्दा ने धीरे से कहा, 'नमस्ते !'

हफ्ता-डेढ़ हफ्ता हो गया । अब वे दोनो नगर में दिखलाई नहीं पड़ते । यद्यपि नन्दा ने एक-दो बार पता भी लगवाया, परन्तु कुछ पता न चल सका । उसने सोचा शायद वे शहर छोड़कर कहीं और चले गये ।

२

आज जब नन्दा कालेज पहुँची तो मालूम हुआ कि बंगाल के सुप्रसिद्ध जादूगर श्री बसु, पाँच बजे से आठ बजे तक, कालेज हाल में अपने जादू के करिश्मे दिखलायेंगे । यद्यपि नन्दा रुकना नहीं चाहती थी, फिर भी सहेलियों के कारण रुकना पड़ा । समय पाँच का दिया गया था, परन्तु श्री बसु ने छह बजे से अपना खेल आरम्भ किया । उन्होंने अपने बहुत-से हाथ दिखलाये । ताश की गड्डी को दियासलाई बना देना । देखते-देखते सबके सामने अपनी हथेली के अन्दर से अँगूठी गायब कर देना । एक रुपये से पचीसों रुपये बना देना । ब्लेडों को दाँतों से तोड़कर खा जाना । जिन्नातों को बुलाकर मरी हुई मुर्गी को जीवित कर देना और अन्त में एक लड़की को भेड़ से फिर लड़की बनाकर उन्होंने अपना खेल समाप्त किया ।

उस समय आठ बज चुके थे, जब नन्दा साइकिल लेकर अपने घर को चली । डी० ए० वी० कालेज होती हुई जब वह कूपर एलेन से आगे निकली तो उसे ऐसा अनुभव हुआ कि इस सड़क पर बिजली का सुचारु

प्रबन्ध न होने के कारण अधिक अँधेरा है। उसने साइकिल की रफ़्तार कुछ धीमी कर दी, पर दुर्भाग्यवश वह एक से चढ़ाई पर भिड़ ही तो गई।

'क्षमा कीजिएगा,' उस व्यक्ति ने नन्दा को उठाते हुए दुःख प्रकट किया, 'मैं सड़क पार करने में आपकी साइकिल न देख सका। कहीं चोट तो नहीं आई ?'

नन्दा ने जो सिर ऊपर उठाया तो भौचक्की-सी रह गई, '....आप ....बाँसुरीवाले ! नमस्ते !'

'नमस्ते। इतनी रात को कहाँ से आ रही हैं ?' बाँसुरीवाले ने पूछा।

'और आप इतनी रात को कहाँ जा रहे हैं ?'

'पहले प्रश्न मैंने किया है।' बाँसुरीवाला मुस्कराया।

'तो क्या हुआ। उत्तर भी पहले आप ही को देना होगा।' नन्दा अपने कपड़ों को झाड़ने लगी।

'कहीं चोट-वोट तो नहीं लगी ?' बाँसुरीवाले ने नन्दा के हाथों में साइकिल थमा दी।

'अभी तो नहीं ही समझिए। आगे के लिए कुछ कहा नहीं जा सकता।'

'अच्छा चलिए। आपको घर तक छोड़ आऊँ।'

'किन्तु उस दिन तो आपने कहा था कि मैं किसी के घर जाता ही नहीं।' नन्दा होठों में हँसी।

'तो मैंने यह कब कहा कि आपके घर चलूँगा। मुझे तो केवल "घर तक" जाना है।' दोनो हँस पड़े।

'इधर आप हफ्ते-दो हफ्ते के लिए कहीं बाहर चले गये थे क्या ? मैंने एक-दो बार पता लगवाने का प्रयत्न भी किया, पर आपका कोई ठौर-ठिकाना हो तो पता भी लगे। निराश होकर चुप बैठ रही।'

बाँसुरीवाले ने नन्दा के हाथ से साइकिल ले ली। 'आप बैठ जाइए। अभी आपको घर पहुँचाये देता हूँ। सम्भवतः आपको देर हो रही हो।'

'नहीं ! यों ही बातें करते चले चलेंगे। बहुत दिनों बाद आपसे भेंट हुई है। आपसे दो-चार बातें पूछनी थीं। बहुत दिनों से सोच रखा था। पता नहीं फिर अवसर मिले या न मिले। यद्यपि पहले मैं आपको पागल समझा करती थी फिर भी मेरे मस्तिष्क में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि आपके साथ यह महिला कौन है ? क्यों है ? आपसे उसका क्या सम्बन्ध है ? "समाज बदलने के सहायतार्थ" स्याही से लिखा हुआ वह बन्द लकड़ी का डब्बा, फिर गली-गली घूमकर आप-जैसे कलाकार से बाँसुरी बजवाकर पैसे इकट्ठा करने का अर्थ, आदि प्रश्नों के लिए मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। परन्तु उस दिन आपका भाषण सुनकर मेरा एक भ्रम तो जाता रहा, किन्तु अन्य बातों की जानकारी के लिए मेरी जिज्ञासा प्रबल हो उठी। आज उन्हीं का समाधान स्वयं आपसे कराना चाहती हूँ।'

'आप एक साथ इतने प्रश्न पूछ बैठीं नन्दा देवी, कि मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, किसका उत्तर पहले दूँ और किसका बाद में। यद्यपि इन प्रश्नों में कोई ऐसा गूढ़ तत्व नहीं छिपा है, जिसे बतलाने में किसी बड़े रहस्य का विस्फोट होगा, जैसा बमों में हुआ करता है; ये तो सीधे और साफ प्रश्न हैं। किसी भी लाल बुझक्कड़ से पूछ लीजिए, वह आपको बता देगा।' बाँसुरीवाले ने नन्दा के प्रश्नों के रूप को बदलने की चेष्टा की। वह मुस्करा रहा था।

'आप मेरे प्रश्नों को हवा में उड़ाने का प्रयत्न न करें महाशय ! मैं इतनी नादान नहीं हूँ।' नन्दा कुछ रुखाई से बोली।

'आप तो नाराज हो गईं नन्दा देवी।'

'नहीं तो। सिर्फ अपनी गलती को महसूस कर रही हूँ। आपके विषय में मुझे जानने का क्या अधिकार ?'

'अच्छा, लीजिए, सुनिए। आपके प्रश्नों का उत्तर आपके ही मुँह से कहलवाये देता हूँ। मान लीजिए आपसे पूछूँ कि मेरे प्रति आपकी सहानुभूति क्यों है ?'

'यह मेरी तबीयत।' नन्दा उसी रुखाई से बोली।

'बस यही बात उसके साथ भी है। एक दिन मैं फूलबाग के चौराहे पर बैठा बाँसुरी बजा रहा था। वह पता नहीं किधर से आकर मेरे बगल में बैठ गई और ज्योंही मैंने बाँसुरी बन्द की वह उसी लकड़ी के डब्बे को लेकर पैसे माँगने लगी। भीड़ हटने पर मैंने उससे पूछा—तुम कौन? उसने उत्तर दिया—एक औरत। मैंने फिर पूछा—तुम मेरे पास क्यों बैठ गई? उसने कहा—यह मेरी तबीयत। ठीक आपवाला उत्तर था। मैंने उससे फिर पूछा—तुमने इस डब्बे पर क्या लिखवा रखा है? इसका अर्थ समझती हो? उसने भी उसी प्रकार प्रश्न किया—तुम दाढ़ी बढ़ाकर सड़कों पर क्यों मारे-मारे फिरते हो, इसका कारण तुम्हें मालूम है? मैंने मन में सोचा, कुछ पागल है। अतः मैं वहाँ से उठकर चल दिया। मेरे साथ-साथ वह भी चलने लगी। मैंने फिर पूछा—मेरे साथ-साथ चलोगी? उसने कहा—हाँ। मैंने पूछा—मेरे साथ रहोगी? उसने कहा—ना। मैं चुप हो गया। तब से वह मेरे साथ-साथ चलती है। कभी-कभी नहीं भी चलती है।'

'किन्तु एक प्रश्न,' नन्दा बोली, 'उसने ठीक ही पूछा था। मैं यह नहीं समझ पाती कि आप इतने बड़े कलाकार होते हुए भी इस प्रकार क्यों रहते हैं? आपके पास इतना बढ़िया आर्ट है कि आप जहाँ भी रहें, केवल आपके संकेतों पर लक्ष्मी नाचती फिरे। मुझे इसी लिए तो आपको देखकर दुःख होता है।'

'मुझे इधर जाना है। शायद आपका बँगला भी यहीं कहीं होगा।' बाँसुरीवाला नन्दा के हाथों में साइकिल देते हुए बोला और वह बाँयीं ओर मुड़ गया।

'सुनिए। यही तो' नन्दा ने उँगली से संकेत करते हुए आग्रह किया, 'मेरा बँगला है। आज मेरे यहीं भोजन करके सो जाइए।'

'नहीं नन्दा देवी। इसके लिए क्षमा चाहूँगा।' वह चला गया।

जब नन्दा खाना खाकर लेटी तो नाना प्रकार की बातें बाँसुरीवाले के विषय में सोचती रही। वह नहीं समझ पा रही थी कि इतना बड़ा

कलाकार होते हुए भी वह ऐसे क्यों रहता है ? वह यदि चाहे तो अपनी कला के द्वारा संसार के सारे सुखों का उपभोग कर सकता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उसे इसका ज्ञान नहीं। वह अपनी बाँसुरी के आकर्षण को जानता है और अनहोनी को होनी कर सकता है। फिर भी वह ऐसा क्यों नहीं करता ? बड़ी अजीब-सी बात है। उसे सड़कों पर घूम-घूमकर बाँसुरी बजाना पसन्द है। जाड़े में ठिठुरते हुए, गली-कुलियों में सो जाना उसे अच्छा लगता है, परन्तु सुख से गद्दों पर सोना पसन्द नहीं। ऐसा क्यों ? क....'यही उत्तर तो मैं भी ढूँढ़ रही हूँ।'—अन्त में नन्दा ने झुँझलाकर कहा, 'होगा, अपने को इससे क्या मतलब ? 'और वह सोने की चेष्टा करने लगी।

३

आज पूर्णिमा है। चन्द्रदेव बड़े सज-धजकर निकले हैं। सम्भवतः सन्ध्या बाला से उनका आज अन्तिम मिलन है। ऐसा अवसर उन्हें अब पन्द्रह दिनों बाद ही मिल सकेगा। सारी सृष्टि मानो उनके इस श्रृंगार पर मुग्ध हो गई थी।

आठ बज चुके होंगे। गंगा के किनारे, रेत में लेटा हुआ वह कुछ सोच रहा था। किन्तु अपनी चिन्ता में वह अधिक समय तक न रुक सका और सोचते-सोचते उठ बैठा। अपने बगल में रखे हुए थैले से बाँसुरी निकाली और बजाने लगा। आज वह अपनी कला को स्वयं परखना चाह रहा था। बाँसुरी बजाते-बजाते वह भाव-विभोर हो उठा। वह अपनी इस मस्ती में भूल गया कि उसकी दुनिया और इस दुनिया में कितना अन्तर है। दूर तक, सारे वातावरण में सन्नाटा छा गया। वास्तव में इस समय बाँसुरी में वह बड़ी सुन्दर तानें ले रहा था।

अभी एक गीत समाप्त करके दूसरे का स्वर भरा ही होगा कि किसी ने पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए टोका, 'मैंने कहा, महाशयजी, नमस्ते ।'

बाँसुरीवाला चौंक गया। 'तुम....मैंने कहा, आप ...यहाँ....कैसे ?'

'और यही प्रश्न यदि मैं आपसे पूछूँ, तो ?'

'इसका उत्तर मैं बहुत पहले दे चुका हूँ। पूछना बेकार होगा। यह बताइए, आप यहाँ कैसे ?'

'यही पीछेवाला तो मेरा बँगला है,' नन्दा ने पीछे की ओर संकेत किया, 'आप शायद भूल गये। चलिए माताजी ने बुलाया है। कह रही थीं, इतनी बढ़िया बाँसुरी तो आज तक मैंने सुनी ही नहीं। वह किसी नौकर को भेज रही थीं, किन्तु जब मैंने यह बताया कि आप किसी के घर जाते ही नहीं तो स्वयं उठकर आने लगीं। अन्त में उन्हें रोककर मुझे आना पड़ा। अब तो चले चलिए।'

'लेकिन यह हो कैसा सकता है नन्दा देवी ?'

'ऐसे हो सकता है।' नन्दा बाँसुरीवाले के हाथ को पकड़कर उठाने लगी, 'आइए चलिए।'

'अच्छा, अच्छा। चलता हूँ नन्दा देवी। चलता हूँ।' बाँसुरीवाला शीघ्रता से हाथ छुड़ाता हुआ उठ खड़ा हुआ और नन्दा के पीछे-पीछे चलने लगा।

'आप शायद नहीं अनुभव करतीं,' बाँसुरीवाला कह रहा था, 'लेकिन मैं जानता हूँ कि इस अनर्थ का कितना बुरा परिणाम मुझे भुगतना पड़ेगा।'

'जैसे इतने भुगतते हैं वैसे एक और सही।'

'एक बात पूछूँ। बताइएगा ?' नन्दा का प्रश्न था।

'आप सदा एक-न-एक प्रश्न पूछा ही करती हैं। पूछिए।'

'आपका शुभ नाम ?'

बाँसुरीवाला हँस पड़ा, 'मैंने सोचा था कोई बड़ा उलझा हुआ प्रश्न

पूछने जा रही हैं, पर पूछ बैठीं मेरा नाम। मुझे लोग मित्र के नाम से पुकारते हैं।'

'मित्र! मित्र भी कोई नाम होता है!! मित्र, दोस्त, साथी, संगी ये सब तो एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं।'

'लेकिन मेरा नाम यही है। आप भी चाहें तो मुझे इसी नाम से पुकार सकती हैं।'

'जी!' नन्दा बँगले के फाटक में प्रवेश करती हुई बोली।

बँगले का पिछला भाग ठीक गंगा के किनारे पर है। उधर भी एक अच्छी-खासी लान बनी हुई है। स्थान-स्थान पर गमले और फूल की क्यारियाँ लगी हैं। सहन के बीचोबीच चार-छह कुर्सियाँ और छोटी-सी गोल मेज रखी हुई है। नन्दा की माताजी बैठी नन्दा की प्रतीक्षा कर रही थीं। नन्दा दूर से ही चिल्ला उठी, 'लिवा लायी माताजी। बड़ी मुश्किलों से तो आये हैं।'

बाँसुरीवाले ने हाथ जोड़ते हुए कहा, 'नमस्ते!'

'नमस्ते!' दो क्षण तक नन्दा की माताजी उस ऊबड़-खाबड़ मनुष्य को देखती रहीं, फिर बोलीं, 'आओ, बैठो बेटा। बड़ी अच्छी बाँसुरी बजाते हो तुम। सूर या कबीर के एक-दो भजन तो सुनाओ, लेकिन पहले मुझे गीत बता देना।'

बाँसुरीवाला कुछ न बोला। मुँह लटकाये हुए बाँसुरी निकालकर फूँकी ही थी कि नन्दा के पिताजी भी आ गये। कपड़े उतारते हुए कमरे से बोले, 'भई वाह! खूब बाँसुरी पर अलाप लेते हैं।'

'बड़ी देर कर दी। आज कहीं दूर निकल गये थे?' नन्दा की माताजी वहीं बैठी-बैठी बोलीं।

'तुम्हारे भाई के साले साहब से भेंट हो गई थी। उन्हीं से बातें करता हुआ बहुत दूर निकल गया। लौटते समय मैंने बहुत कहा कि घर होते चलिए, लेकिन तुम तो जानती हो, दिमाग का एक पेंच कुछ ढीला होने के कारण जल्दी कोई बात कम समझ में आती है!' कुर्सी

पर बैठते हुए नन्दा के पिताजी बोले, 'खैर होगा। अब इनसे बाँसुरी सुनो। अच्छा साहब,' बाँसुरीवाले की तरफ वह मुखातिब हुए, 'लेकिन.... लेकिन आपको,' जैसे उन्हें बाँसुरीवाले को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ हो, 'मैंने कहीं देखा है।'

'हो सकता है देखा हो। सड़कों पर, गलियों में, स्कूल-कालेजों के सामने, बँगलों के सामने, गंगा के किनारे मेरे कहने का तात्पर्य कि सारे दिन मैं इधर-से-उधर और उधर-से-इधर शहर में चक्कर ही लगाया करता हूँ। अभी तो यही क्रम है। बरसात आरम्भ होने दीजिए तब मैं अपने करिश्मे आपको और दिखाऊँगा।' बाँसुरीवाला मुस्करा रहा था।

'क्या मतलब?' नन्दा ने पूछा।

'मतलब बहुत सीधा है। बरसात में मेरा दिमाग फिर जाया करता है।'

'आप कभी कलकत्ते भी रह चुके हैं?' नन्दा के पिता ने प्रश्न किया।

'कलकत्ते तो नहीं, कुछ दिनों मद्रास अवश्य रहा हूँ। किन्तु वहाँ पहुँच कैसे गया था, इसका मुझे ज्ञान नहीं।'

'आपको सम्भवतः लोग आचार्य के नाम से जानते हैं। क्यों ठीक है न?'

'जी नहीं। मुझे लोग मित्र कहकर पुकारते हैं और यही मेरा नाम है।'

नन्दा के पिता ने उसे ध्यान से देखते हुए फिर प्रश्न किया, 'आपकी उम्र पैंतीस की होगी?'

'जी नहीं।'

'हाँ-हाँ, पैंतीस नहीं तो बत्तीस साल की।'

'यह भी गलत। मेरी उम्र ठीक तीस साल की है। समझे आप?'

बाँसुरीवाला उठते हुए कुछ कठोर शब्दों में बोला, 'और तो कुछ नहीं पूछना है? सोच लीजिएगा। फिर कभी भेंट होगी। अच्छा जी, सब लोगों को नमस्ते।' वह बाँसुरी बजाता हुआ बाहर निकल गया।

'क्या बात है पिताजी? पता नहीं आप क्या-क्या इधर-उधर की बातें उससे पूछने लगे। इसे आप पहले से जानते हैं?'

'हाँ। जानता तो बहुत दिनों से हूँ और इसकी खोज में भी हूँ, लेकिन कुछ-कुछ सन्देह हो रहा है।' नन्दा के पिता कुछ सोच रहे थे।

'तुम्हारे लिए क्या नौकरी और क्या छुट्टी, दोनो बराबर हैं। जब देखो तब किसी-न-किसी उलझन में लगे ही रहते हो। खाना खाओगे? निकलवाऊँ?' नन्दा की माता चिढ़ती हुई बोलीं।

'तुम लोग खाओ। मैं थोड़ी देर रुककर खाऊँगा।' वह उठकर कमरे में चले गये।

*

'पिताजी, यह किसी गुप्त पार्टी का आदमी तो नहीं है?'

'हूँ!' फोटू और कुछ कागजों को देखते हुए वह बोले, 'खाना खाने जाओ नन्दा!'

नन्दा समझ गई!

४

अँधेरी रात। काले-काले बादल राक्षसों की भाँति मुँह फैलाये एक के ऊपर एक चढ़ते चले आ रहे थे। बिजली की तड़प और बादलों की गड़गड़ाहट से सारा नगर काँप रहा था। आधीरात होने को आई। शहर से दूर, बहुत दूर, गंगा के किनारे जहाँ मुर्दों की बस्ती है, उसी बस्ती के एक खड्ड में बैठे हुए दो व्यक्ति धीरे-धीरे कुछ बातें कर रहे थे।

एक ने पूछा, 'कलकत्ते में सी० आई० डी० विभाग का जो प्रधान था उसे तो तुम जानती ही होगी?'

'क्यों नहीं। वही रघुनाथराव झिगड़ीवाला, जिसने बयालीस की क्रान्ति में तुम्हारे कई-एक साथियों को गोलियों के घाट उतार दिया था और....और....उसे कौन भूल सकता है?' महिला बोली।

'वह यहाँ भी आ गया है।'

'तुम्हें कैसे मालूम ?' महिला ने बड़े आश्चर्य से पूछा।

'चलो। तुम्हें रास्ते में बतलाऊँगा। मोटर-साइकिल खड़ी है। मैं सोचता हूँ कल से तुम मेरे साथ शहर में घूमना बन्द कर दो।'

मोटर-साइकिल चलाते हुए चालक बोला, 'बरसाती पहन लो। सम्भव है रास्ते में पानी बरसने लगे।'

मोटर-साइकिल चली और देखते-देखते नगर से बाहर निकल गई। जब यमुना और बेतवा को पार करती हुई आगे बढ़ी तो महिला ने पूछा, 'तुमने बताया नहीं। तुम्हारी उसकी भेंट कहाँ हो गई ?'

'कल ही की तो बात है,' चालक ने कहना आरम्भ किया, 'मैं संयोग से पुराने कानपुर की ओर चला गया था। लौटते समय सन्ध्या हो गई थी। सोचा, गंगा की रेती में चलकर लेट रहूँगा। रात के लिए कोई विशेष कार्यक्रम था नहीं। रात सुहावनी थी। बालू में बैठकर बाँसुरी बजाने लगा। केवल एक ही गीत बजाया था कि नन्दा पीछे से मेरे कन्धों को हिलाते हुए बोली—नमस्ते ! तुम तो नन्दा को जानती हो ? वही लड़की, जिसके साथ हम लोग बालिका विद्यालय गये थे। मैंने उससे पूछा—तुम यहाँ कैसे ? उसने पीछे की ओर संकेत करके बतलाया—यही तो मेरा मकान है। और मुझे अपने घर ले गई। वहीं मेरी भेंट रघुनाथराव से हुई। रघुनाथराव नन्दा का पिता है। मैं तो उसे देखते ही पहचान गया, किन्तु वह सम्भवतः मुझे ठीक से नहीं पहचान सका। उसने बड़े आश्चर्य से पूछा—आपको मैंने कहीं देखा है ! शायद आप कलकत्ते में रह चुके हैं ? मैंने तत्काल उत्तर दिया—कलकत्ते तो नहीं, मद्रास अवश्य रह चुका हूँ। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि उसे मेरा नाम तक मालूम है। उसने दुबारा प्रश्न किया—आपको सम्भवतः आचार्य के नाम से पुकारते हैं। मैंने कहा—जी नहीं, मेरा नाम मित्र है। इसी प्रकार उसने एक-दो प्रश्न और किये। मैंने भी इधर-उधर की खूब हाँकी। फिर उठकर चला आया।'

'ठीक किया तुमने।' महिला आचार्य के सिर को चूमती हुई बोली।

मोटर-साइकिल महोबा को पीछे छोड़ती हुई आगे विस्तृत बीहड़ जंगलों में मुड़ गई। टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होती हुई, छोटी-छोटी पहाड़ियों के ऊपर चढ़ती-उतरती एक कुटिया के सामने आकर रुकी। द्वार पर थपथपाते हुए धीरे से आचार्य ने कहा, 'दरवाजा खोलो, मधुकर।'

'कौन ?' अन्दर से किसी ने खाँसते हुए पूछा।

'मैं हूँ। आचार्य।'

दोनो को अन्दर करते हुए मधुकर ने पूछा, 'कुशल तो है ? भाभीजी भी साथ आ गईं ?'

'हाँ। सब ठीक है। चलो अन्दर बतायेंगे।' आचार्य ने उत्तर दिया।

'देखा आचार्य,' भाभीजी बरसाती उतारती हुई बोलीं, 'मधुकर ने खाँसने का कितना बढ़िया अभ्यास कर लिया है। मालूम पड़ता है सचमुच तपेदिक का रोगी हो।'

मधुकर हँसने लगा। वह बीस-बाईस वर्ष का युवक था।

झोंपड़ी के प्रकाश को बुझाकर मधुकर ने झोपड़ी के पीछेवाली टटिया को बीच से हटाया। वहाँ ऊपर चढ़ने के लिए द्वार खुल गया। वहीं से लगी हुई एक बड़ी-भारी नुकीली चट्टान खड़ी थी, जिस पर ये लोग लगभग दस गज बन्दरों की भाँति झुककर चढ़ते हुए ऊपर की ओर बढ़े। चट्टान की चोटी के पास ही से बरगद की दो जड़ें नीचे की ओर लटकी हुई थीं। लगभग पच्चीस हाथ तक ये जड़ें नीचे को चली गई थीं। इन जड़ों को पकड़कर एक-एक करके ये तीनों व्यक्ति नीचे को उतर गये। मधुकर ने टार्च जलायी। ये लोग बायीं ओर मुड़ते हुए आगे बढ़े। दस कदम चलने पर दो विशालकाय चट्टानों के बीच एक सँकरा-सा रास्ता दिखाई पड़ा। मधुकर टार्च दिखलाता हुआ आगे-आगे चलने लगा। परन्तु रास्ता इतना सँकरा और टेढ़ा-मेढ़ा था कि प्रकाश से सब लोग लाभ न उठा सकते थे। मधुकर के पीछे भाभीजी और

उनके पीछे आचार्य एक-दूसरे का हाथ पकड़े आगे बढ़ रहे थे। कुछ ही देर में ये लोग एक ऊँची चोटी पर पहुँच गये, जहाँ यह रास्ता समाप्त हो जाता था।

पसीने में लथपथ मधुकर ने ऊपर पहुँचकर कहा, 'आज बड़ी गर्मी है आचार्य।'

'वैसे भी इसमें गर्मी तो रहती ही है। हवा जो कहीं से नहीं घुस पाती।' आचार्य माथे का पसीना पोंछ रहे थे।

चोटी के दूसरी ओर लगभग छह हाथ नीचे एक समतल चट्टान थी, जिस पर सब लोग एक-एक करके कूद पड़े। मधुकर ने टार्च के शीशे को बदलकर हरा शीशा लगाते हुए नीचे की ओर रोशनी फेंकी।

नीचे से आवाज आयी, 'क्या बात है मधुकर?'

'भाभीजी और आचार्य आये हैं। सीढ़ी लगाओ।'

सीढ़ी लग गई। तीनों जने नीचे उतर गये।

एक छोटा-सा सहन था। फूस-पत्तों का नहीं, पत्थर का। उसी से लगी हुई एक समतल और चिकनी कमरानुमा गुफा थी जिसमें पन्द्रह-बीस व्यक्ति बड़े आराम से रह सकते थे। गुफा की दाहिनी ओर दो पहाड़ियों के बीच से एक बड़ा भारी पीपल का वृक्ष निकला हुआ था, जिसकी सघन छाया से वह स्थान गर्मियों में भी अधिक नहीं तप पाता। ऊपर की ओर, जहाँ से तीनों व्यक्ति सीढ़ियों से उतरे थे, एक पतला-सा सोता, शान्त रूप से बारहों मास बहता हुआ पहाड़ों में कहाँ विलीन हो जाता था, कोई नहीं जानता।

आचार्य के नीचे उतरते ही सब लोग गुफा से बाहर निकल आये, जिनमें चार युवतियाँ और छह पुरुष थे। सभी ने भाभीजी के पैर छुए। भाभीजी सब के सिर पर हाथ फेरती हुई बैठ गईं।

सब के बैठ जाने पर आचार्य ने मुस्कराते हुए पूछा, 'आज सब लोग यहीं दिखाई पड़ रहे हैं?'

'इतवार है न आचार्य।' लम्बा-सा काला दिनकर बोला।

'ओः ! ठीक है दिनकर बाबू । मुझे इसका ध्यान ही न था ।'

'पर इतनी रात को आपको भाभाजी के साथ आते देखकर हम लोग घबड़ा गये थे । कोई विशेष बात तो नहीं ?' अंजना ने पूछा ।

'नहीं । लेकिन आगे चलकर हो भी सकती है, ऐसा मेरा अनुमान है । रघुनाथराव झिगड़ीवाला को आप सब जानते ही होंगे ? वह कलकत्ते से यहाँ आ गया है । क्यों आया है ? कैसे आया है ? इसका पता मुझे नहीं । कल तक पता लगा लूँगा । अन्य लोगों को विशेष चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं ।' आचार्य रुकते हुए आगे बोले, 'मैं पहले भी कई बार आप लोगों से कह चुका हूँ और आज फिर उसे दुहराते हुए इस बात का स्मरण करा देना चाहता हूँ कि हमारा एकमात्र ध्येय है जनता के मस्तिष्क को बदलना । हमें न तो उन्हें राजनीति पढ़ाना है और न दलबन्दियों के दाव-पेंच । उन्हें केवल एक बात विदित कराने की आवश्यकता है और वह है उनका अधिकार और उनकी शक्ति । इसमें सन्देह नहीं कि अब वे अनुभव करने लगे हैं कि पहले से उनके अन्दर शक्ति की वृद्धि हुई है । उनके अन्दर एकता की भावना जागी है । उन्होंने यह भी अनुभव किया है कि किसी भाँति उन्हें अपने देश को गोरे विदेशियों से मुक्त कराना है, इस साम्राज्यवाद से मुक्त कराना है, अत्याचारियों से मुक्त कराना है । अब अवसर आने पर वे बयालीस की जन-क्रान्ति से भी बड़ी जन-क्रान्ति का सृजन कर सकते हैं । इसलिए अब आवश्यकता इस बात की है कि हमें देश में उभरी हुई जागृति को और अधिक उभारना है । यद्यपि हजारों वर्ष से "चेरी छाँड़ि न होइब रानी" की भावना व्यक्ति की रग-रग में व्याप्त है और उसकी जड़ इतनी मजबूत हो गई है कि हमें उसे उखाड़ फेंकने में समय लगेगा । अतः घबराकर जल्दीबाजी नहीं करनी है । उससे बने-बनाये खेल के बिगड़ने की सम्भावना है । तो मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि हमें दासतावाली भावना को मिटाकर प्रत्येक मनुष्य के भीतर यह उत्साह उत्पन्न करना है कि वे सब एक सूत्र में बँधकर एक ऐसे नये समाज का निर्माण करें

जिसमें सभी कुछ उनका हो और वे ही इसके सर्वेसर्वा हों। उन्हें बतलाइए, समझाइए। उनके भीतर प्रेरणा भर दीजिए कि संसार की सारी शक्तियाँ उन्हीं के भीतर निहित हैं। वे यह न भूल जायें कि उनके एक झपट्टे से सृष्टि में खलबली मच सकती है; पूरब का पश्चिम और पश्चिम का पूरब हो सकता है।'

अपनी बात को समाप्त करते हुए आचार्य ने आगे कहा, 'हाँ, इतना आप सब लोगों को सदैव ध्यान में रखना है कि आप अपने कार्यों को बड़ी शान्ति से करेंगे। आपके भीतर उत्तेजना लेशमात्र न हो। वैसे अवसर पड़ने पर हम हिंसा भी कर सकते हैं, परन्तु वह परिस्थिति कैसी होती है—इसे आप भली-भाँति जानते हैं। मेरा भी रूप अब दूसरा होगा। आप लोगों को बताये जाता हूँ। अवसर मिलने पर मैं अगले इतवार को आऊँगा। शहर में सब कार्य ठीक चल रहा है। कलकत्ते या बम्बई से कोई समाचार आया था उदय ?'

'हाँ, चिट्ठियाँ आई थीं। काम सुचारु रूप से चल रहा है।' उसने चिट्ठियाँ लाकर दे दीं।

चिट्ठियों को पढ़ने के उपरान्त आचार्य बोले, 'अच्छी बात है। अब मैं चलूँगा।' वह उठ खड़े हुए।

रस्सियों की एक सीढ़ी पीपल की डाल से लटका दी गई। दो सौ हाथ से कम लम्बी न होगी। आचार्य और मधुकर दोनो नीचे उतर पड़े।

रात्रि के अन्तिम चरण में फिर मोटर-साइकिल फटफटाती हुई जंगल से निकली और कानपुर की ओर मुड़ गई। मूसलाधार पानी बरसने लगा था।

मधुकर अपनी झोपड़ी में जाकर लेट रहा। उसका कार्य है झोपड़ी में रहकर बाहर की सारी बातों का पता लगाते रहना।

५

आज तीन दिनों से पानी का बरसना बन्द नहीं हुआ था। लोग ऊब उठे थे। रह-रहकर सबकी दृष्टि आकाश की ओर उठ जाती थी, परन्तु वहाँ निराशा के अतिरिक्त आशा नहीं झलकती। दिन के दस बजने को आये। पश्चिम की ओर बादल फटने लगा। लोगों की जान-में-जान आई। देखते-देखते नभमंडल नीलवर्ण हो उठा।

कोतवाली के सामने, सड़क के इस ओर, पानी में भींगा हुआ वही बाँसुरीवाला नंग-धड़ंग सड़क पर चारों खाने चित लेटा, कुछ बड़बड़ा रहा था। उधर से एक वृद्ध निकले। देखकर उनको दया आ गई। रुककर पूछने लगे, 'क्यों भाई, कुछ तबीयत खराब है?'

बाँसुरीवाला खटाक से उठ बैठा, 'आप भी कमाल करते हैं बुढ़ऊ दादा। मेरी तबीयत,' उसने अपने सीने को जोर से ठोका, 'कहाँ खराब है? ठीक तो है। देखिए न, लोग मुझे न मालूम पागल क्यों समझते हैं। मैं पागल हूँ? कैसे पागल हूँ? आप ही बताइए।'

एक-एक दो-दो करके लोग इकट्ठे होने लगे थे। वह बोलता ही गया, 'अरे, पागल मैं हूँ या देश के सत्ताधारी और उनके लगुए-भगुए ये बड़े-बड़े सेठ-साहूकार? इनको पागल कोई नहीं कहता। सब मुझे ही पागल कहते हैं। अच्छा, तुम्हीं बताओ बुढ़ऊ, न मेरे पास कपड़ा है न खाना। सब देखते हैं। समझते हैं। फिर भी कोई प्रबन्ध नहीं करता। तब पागल मैं हुआ या प्रबन्ध करनेवाले? बोलो? कोई तो बोलो भाई! लेकिन तुम लोग क्या बोलोगे! तुम लोग तो उनसे भी अधिक पागल हो, डरपोक हो। नहीं भला, देखते हुए चुप रहते? न किसी के पास खाना है न पहिनने को कपड़ा, फिर भी तुम्हारे कानों पर जूँ नहीं रेंगती। छिः! डूब मरो पागलो? भाग जाओ यहाँ से! तुम्हारी सूरत से मुझे नफरत है!' फिर वह बड़े जोरों से हँसता हुआ कहने लगा, 'अंग्रेजी सरकार जिन्दाबाद! हिन्दुस्तान जिन्दाबाद! हम जिन्दाबाद!' वह उठकर बड़े चौराहे की ओर दौड़ता हुआ चला गया।

लोग आपस में फुसफुसाते हुए चले गये।

रिजर्व बैंक के पास पहुँचकर पगला रुक गया। कुछ समय तक बैठा-बैठा धूप में अपनी पतलून सुखाता रहा। फिर अनायास धूल में लोटने लगा। इतने में उसके समीप, सड़क के किनारे एक मोटर आकर रुकी। एक लम्बा-चौड़ा मनुष्य हाथ में बेंत लिये उतरा। उसने पगले को बेंत से गोदते हुए पूछा, 'क्यों मिस्टर, यहाँ क्या हो रहा है?'

'तुम्हें दिखाई नहीं देता?' पगले ने उत्तर दिया।

'मुझे पहिचाना?'

'पागल हो गये हो?'

'अब आप पागल बन गये हैं? घबड़ाइए नहीं, बहुत जल्द प्रबन्ध करनेवाला हूँ।'

पगले ने थूकते हुए हाथ से संकेत किया, 'जाओ, जाओ! भाग जाओ!'

रघुनाथराव कुछ सोचते हुए आकर मोटर में बैठ गये।

बाँसुरीवाले ने अपने को पूर्ण रूप से पागल बना लिया था। अब उसे देखकर कहना कठिन है कि कभी वह एक सुलझा हुआ मनुष्य भी रहा होगा। उसकी यह दशा देखकर नगर के लोग दुःखित थे, विशेषकर संगीत के प्रेमियों को तो बड़ा दुःख था। अब उन्हें बाँसुरी सुनने को जो नहीं मिल रही थी। एक-दो सज्जनों ने उसके दवा-दारू का प्रबन्ध भी किया, परन्तु बाँसुरीवाला यह काहे को करने लगा। विवश होकर वे सज्जन चुप हो रहे।

*

एक दिन की बात है। रात के दस बजे होंगे। बाँसुरीवाला पगला दर्शनपुरवा में चक्कर लगा रहा था। अब उसे अधिकतर मजदूरों की बस्तियों में घूमते हुए देखा जाता है। शहर में उसका आना-जाना कम हो गया था।

आसमान साफ था। हवा भी धीरे-धीरे चल रही थी। एक स्थान

पर सड़क के किनारे बीस-पचीस मजदूर बैठे आल्हा सुन रहे थे। आल्हा पढ़नेवाला भी उन्हीं मजदूरों में से था। पगले ने मजदूरों के बीच में घुसते हुए, पढ़नेवाले के पास पहुँचकर, पुस्तक को बन्द कर दिया।

कुछ मजदूर चिल्ला उठे, 'पागल है पागल! इसे बाहर निकालो!'

'चुप रह नासमझ,' पगले ने कड़ककर कहा, 'पागल तो मैं हूँ ही। यह भी कहने की बात है! देखता नहीं। मैं दिन-रात घूमता हूँ, बेकार आवारों की भाँति। फिर भी लोग मुझे बिना माँगे भोजन देते हैं, कपड़ा देते हैं और कभी-कभी पैसे भी। और दूसरा तू है। दिन-रात परिश्रम करता है। खून के पसीना बनाता है। मौका पड़ने पर अपनी जान तक की बाजी लगा बैठता है, लेकिन फिर भी न तेरे बदन पर कपड़ा है, न खाने के लिए भरपेट भोजन। तेरे बच्चे जाड़ों में ठिठुरते, धूप में जलते और पानी में भीगते हुए मर जाते हैं। परन्तु तू उफ् नहीं कर पाता। करेगा कैसे? तू पागल जो नहीं ठहरा। अगर तू पागल होता, तेरे अन्दर भी पागलपन की धुन होती तो आज तू इस दशा में न होता। परन्तु....परन्तु बिना किसी पागलपन के कोई काम होना मुमकिन नहीं। काम चाहे न करो, लेकिन कम-से-कम पहले पागल तो बन जाओ। समय को यों न बरबाद करो मूर्खो! कुछ करो? समझे। आल्हा पढ़ने से कोई फायदा नहीं।' और वह बड़बड़ाता हुआ उठकर चल दिया।

६

आज शनिवार का दिन है। पगले के सामने एक बड़ी उलझन थी। नहरिया की पुलिया पर खड़े-खड़े कभी वह दस कदम आगे बालिका विद्यालय की ओर बढ़ता तो कभी पीछे को मुड़ जाता। सम्भवतः वह यही निर्णय नहीं कर पा रहा था कि उसे करना क्या चाहिए। इस प्रकार

उसे सोचते-सोचते पन्द्रह-बीस मिनट हो गये, पर वह किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका। अचानक सामने से कार निकलते ही वह 'नन्दा देवी, नन्दा देवी' चिल्लाता हुआ उसके पीछे दौड़ पड़ा। कार चौराहे के पास आकर रुक गई। पगले ने खिड़की के पास पहुँचकर हाँफते हुए कहा, 'नमस्ते नन्दा देवी! नमस्ते!'

'ओ-हो! बाँसुरीवाले मित्र! नमस्ते।'

इतने में चौराहेवाला पुलिस, घेरे से उतरते हुए डपटकर बोला, 'क्यों रे हरामजादे, मरेगा क्या? पागलों की तो जैसे इस शहर में बाढ़ आ गई है। जहाँ देखो वहीं ये बेहूदे चक्कर लगाते रहते हैं। भागता है कि डंडा खायेगा?' पुलिसवाले ने मारने के लिए डंडा उठाया।

'तुम लोगों की जबान काबू में नहीं रहती है? मूर्खों की भाँति बात करते हो।' नन्दा ने पुलिसवाले को डाँटा, 'जाओ, अपना काम देखो।'

पुलिसवाला सन्नाटे में आ गया।

'आइए बैठिए।' पगला नन्दा की बगल में बैठ गया। गाड़ी नन्दा स्वयं चला रही थी।

गाड़ी चलने पर उसने पूछा, 'आप इस समय कहाँ जा रही थीं?'

नन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

पगला हँसता हुआ बोला, 'मैं समझ गया। आपको पुलिसवाले की बातों से दुःख पहुँचा है, लेकिन यह मेरे लिए नयी बात नहीं है। अभी तो उसने हरामजादा और बेहूदा ही कहा था। ये मा-बहिनों तक नहीं छोड़ते, किन्तु दोष इनका नहीं। जिम्मेदार कोई और है।'

'जी।' नन्दा धीरे से बोली।

'चलिए, बोलीं तो आप। अब बताइए आप जा कहाँ रही थीं?'

नन्दा को हँसी आ गई, 'जा रही थी अपनी सहेलियों के पास। बीच में आप मिल गये। चलिए आगेवाले पार्क में बैठकर बातें करेंगे।'

'बहुत ठीक। मैं भी आपसे यही कहनेवाला था।'

कार को एक ओर खड़ी करके दोनो पार्क में आकर बैठ गये।

'सच पूछिए,' पगले ने बात प्रारम्भ की, 'मैं आज आपकी बड़ी याद कर रहा था।'

'झूठ, बिलकुल झूठ। भला आप मुझे क्यों याद करने लगे?' नन्दा मुस्करा रही थी।

'इसका एक कारण है। शायद आपको स्मरण हो, उस दिन मैंने आपके बँगले पर कहा था कि बरसात में मेरा दिमाग कुछ बिगड़ जाता है। परसों या नरसों की बात है, मेरा दिमाग बिगड़ा हुआ था। उसी बीच आपके पिताजी से भेंट हो गई। कहाँ हुई, कैसे हुई, यह मुझे ध्यान नहीं। उनके कुछ पूछने पर मैं ऊल-जलूल बातें करने लगा। आज मस्तिष्क के शान्त होने पर उस दिनवाली बात स्मरण हो आयी। सोचा, आप या आपके पिताजी से भेंट हो तो क्षमा माँग लूँ। संयोग की बात आपसे भेंट हो ही तो गई।'

'परन्तु जब आप उस दिन अपने आपे में थे ही नहीं तो आपके लिए क्या भला क्या बुरा—सब बराबर। इसमें क्षमा माँगने की कौन-सी बात?'

'फिर भी बेअदबी के लिए माफी माँगनी चाहिए। आपके पिताजी तो यहीं होंगे?' आचार्य को जो पूछना था पूछ लिया।

'हाँ! अभी एक महीने और रुकेंगे, छुट्टी बढ़वा ली है।'

'खैर, जो कुछ भी हो। आप मेरी ओर से क्षमा अवश्य माँग लीजिएगा, भूलिएगा नहीं।'

'अच्छी बात है। कह दूँगी। सच-सच बताने को कहिए तो एक बात पूछूँ।'

'जो बात मुझे मालूम है उसे अवश्य बताऊँगा। इसमें सच और झूठ का क्या सवाल? पूछिए।'

'क्या आपको दूसरों से गाली सुनना और इधर-उधर भटकते हुए मारे-मारे फिरना अच्छा लगता है? क्या आपको अपने सम्मान का ध्यान नहीं? क्या आप नहीं चाहते कि आपका जीवन सुख और शान्ति से

व्यतीत हो ? यदि आप चाहते हैं तो उसके लिए प्रयत्न क्यों नहीं करते ? आपके लिए यह बहुत बड़ी बात नहीं है। और यदि आप ऐसा नहीं चाहते तो इसका कारण क्या है ? आप भले ही औरों को इधर-उधर की बातों से चकमा दे दें, परन्तु जो एक बार आपके सम्पर्क में आ चुका है, उसे न तो आप पागल प्रतीत होंगे और न अनपढ़। उसे आपकी गहराई और व्यक्तित्व को समझने में देर नहीं लगेगी। आपका यह बनावटीपन उसे धोखे में नहीं रख सकता। मैं उसी दिन समझ गई थी कि आपका वास्तविक रूप वह नहीं है, जो आपने बना रखा है। सत्यता कहीं और छिपी है। पर इसे मैं पूछ भी कैसे सकती थी। आपसे मेरी कोई घनिष्ठता तो थी नहीं। सोचा, जल्दी में कुछ अनुचित न हो जाये। लेकिन उस दिन मेरे बँगले से जाने के बाद जो कुछ मेरे पिताजी ने बतलाया उससे मेरी धारणा, जो पहले आपके विषय में बन चुकी थी, दृढ़ हो गई। उसे अब आप किसी भाँति डिगा नहीं सकते और न मुझे आप भुलावे ही में डाल सकते हैं।'

'मेरे विषय में क्या बताया आपके पिताजी ने ? वह मुझे क्या जानें ? मैंने इसके पहले उनको कभी देखा तक नहीं।' पगले ने बनावटी आश्चर्य दिखाते हुए जिज्ञासा प्रकट की।

नन्दा गम्भीर होकर बोली, 'आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं है न ? ठीक है। होना भी नहीं चाहिए। लेकिन क्या आप यह नहीं सोच सकते कि मैं ही आपके प्रति इतनी क्यों सहानुभूति रखती हूँ ? शहर में और भी तो हैं। खैर होगा।' नन्दा के नेत्र डबडबा आये थे।

पगले ने हाथ उठाया नन्दा की पीठ को थपथपाने के लिए, पर अचानक रुक गया। बोला, 'सन्तोष का फल मीठा होता है नन्दा। समय की प्रतीक्षा सब करते हैं, किन्तु उससे लाभ उठाना बुद्धिमानों का ही काम है। तुम समझदार हो। तुम्हें समझाने की आवश्यकता नहीं। आओ, चलो चलें। तुम्हें घर जाने में देर होगी। अभी तुम्हें कालेज भी तो जाना है।' वह उठ खड़ा हुआ।

विवश होकर नन्दा को उठना पड़ा, 'कल मेरी वर्षगाँठ है। आइएगा न ? बहुत दिनों से आपकी बाँसुरी सुनने को नहीं मिली।'

'देखो। अगर दिमाग ठीक रहा तो अवश्य आऊँगा। वैसे मेरी प्रतीक्षा में न रहना।'

'आप भी बैठ जाइए। जहाँ कहिएगा आपको छोड़ती हुई चली जाऊँगी।' नन्दा ने कार में बैठते हुए आग्रह किया।

'तुम जाओ। मेरा ठिकाना निश्चित नहीं।'

वह चल दिया। और नन्दा भी कुछ सोचती हुई चल दी।

*

यद्यपि बादलों से नभ-मंडल साफ था, फिर भी अँधेरा पक्ष होने के कारण अन्धकार अधिक था। अभी आधीरात होने में देर थी। एक मोटर-साइकिल कानपुर से निकली और जमुना-बेतवा को पार करती हुई महोबा के आगे उन्हीं जंगलों में विलीन हो गई।

झोपड़ी के सामने मोटर-साइकिल रोकते हुए आगन्तुक ने पुकारा, 'मधुकर!'

'खोलता हूँ आचार्य। मैं तो बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहा था। ऊपर सब लोग बैठे हुए हैं।' मधुकर ने द्वार खोल दिया।

आचार्य की गोष्ठी लगभग डेढ़ घंटे तक होती रही। समस्या क्या थी ? लोगों ने उस पर क्या निर्णय किया ? इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। गोष्ठी समाप्त हुई। आचार्य लौट गये।

७

कोतवाली के ऊपर लगी हुई घड़ी में दिन के आठ बज रहे थे। आकाश बादलों से साफ था। धूप निकली हुई थी, परन्तु हवा ठंडी चल

रही थी, जिसके कारण नगर के वातावरण में मनोरंजकता आ गई थी। शहर में चहल-पहल और भीड़-भाड़ बढ़ी। ग्राहकों के कारण दुकानदारों के चेहरे भी खिल उठे। बरसात के महीनों में व्यापार बड़ा ढीला चलता है। कभी-कभी तो हफ़्तों गुजर जाते हैं और बोहनी तक नहीं होती।

आज लखनऊ से गवर्नर महोदय किसी विशेष कार्यवश कानपुर तशरीफ ला रहे थे। शहर के अधिकारी और देश को गुमराह करनेवाले चापलूस पूँजीपति अपनी-अपनी तैयारियों में लगे हुए थे। भिन्न-भिन्न दफ्तर भिन्न-भिन्न प्रकार से सजाये जा रहे थे। सड़कों के किनारे बैठे हुए अन्धे, अपाहिजों तथा कोढ़ियों को मार-मारकर हटाया जा रहा था, जिसमें उनके शरीर से निकली हुई दुर्गन्ध मोटर में बैठे हुए गवर्नर महोदय की नाक तक न पहुँच जाये। जिन-जिन रास्तों से उनकी गाड़ी के आने-जाने की सम्भावना पायी जाती थी, उन-उन सड़कों और उन पर बने हुए दफ़्तरों की सफाई और सजावट बड़े जोरों से हो रही थी। पुलिस का प्रबन्ध भी आज विशेष रूप से था। सड़क के किनारे हर आधे फर्लांग पर एक पुलिसवाला खड़ा दिखलाई पड़ रहा था। अंग्रेजी सरकार के पिट्ठू तथा पूँजीपतियों की मोटरें इधर-उधर इस प्रकार दौड़ रही थीं जैसे उनके यहाँ कोई बारात आनेवाली हो।

किसी प्रकार दिन समाप्त हुआ। लगभग पाँच बजे गवर्नर साहब की मोटर लखनऊ से चली। गाड़ी के आगे-आगे एक पुलिस की मोटर थी, जिसपर सशस्त्र पुलिस और नगर के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस बैठे हुए थे। गवर्नर के पीछे एक और गाड़ी थी, जिसमें उनके अंगरक्षक तथा अन्य नौकर-चाकर बैठे हुए थे। जैसे ही ये गाड़ियाँ नगर के बाहर हुईं, पाँच मोटर-साइकिलें पीछे से निकलीं, जिनमें दो सब से आगे-आगे चलने लगीं और तीन पीछे-पीछे। सारे चालक सैनिक वर्दी में थे। प्रत्येक की कमर में रिवाल्वर लटक रहा था। उनके दाहिने हाथों पर एक सफेद कपड़े की पट्टी लिपटी हुई थी, जिस पर अंग्रेज़ी के लाल अक्षरों में लिखा था—एम० पी० (मिलिट्री पुलिस)।

उन्नाव आया उसके बाद गंगा-पुल। जैसे ही पुलिस की मोटर पुल के फाटक में घुसी, आगे के दोनो चालकों ने अपनी-अपनी साइकिलों की रफ्तार बढ़ा दी और उस मोड़ पर जा पहुँचे जहाँ सड़क मुड़ती है। गवर्नर की गाड़ी आगेवाले फाटक के समीप पहुँची ही थी कि धाँय-धाँय-धाँय के शब्द हुए और तीनों मोटरें जहाँ थीं वहीं खड़ी रह गईं। चारो ओर सन्नाटा छा गया। सब के कलेजे धक्-से हो गये। फाटक-वाला सिपाही कुछ सचेत हुआ, किन्तु तत्काल अपने सीने पर तना हुआ पिस्तौल देखकर शान्त हो गया। पीछेवाले तीनो चालक प्रत्येक मोटर के सामने पिस्तौल ताने खड़े थे।

गर्वनर के सोने के सामने रिवाल्वर तानते हुए बीचवाला अंग्रेजी में बोला, 'घबड़ाइए नहीं गर्वनर साहब! हम लोग किसी के प्राण नहीं लेते। सोचा, आपसे लखनऊ मिलने में बड़ी कठिनाई होती है और दूसरी बात अवसर न मिलने के कारण वहाँ आप सबसे मिल भी नहीं पाते। इसलिए हम लोगों ने यहीं मिलना उचित समझा। आपको थोड़े में बतला दूँ कि यद्यपि कांग्रेस के नेतृत्व में हमारी पार्टी हर कुर्बानियाँ करने को तैयार है, लेकिन साथ ही वह अपना एक अलग ध्येय भी रखती है। हम पार्टी के सदस्य स्वयं भूखे मर सकते हैं, परन्तु देश की जनता को भूख से तड़पकर मरते हुए नहीं देख सकते हैं। अब आपकी हुकूमत मनमानी नहीं कर सकती। आप गल्ला जलवाकर या समुद्र में फिंकवाकर अकाल की स्थिति से देश की उठती हुई जाग्रति को कुचल नहीं सकते। आपकी सरकार ने जिस इरादे से इस नई नीति को अपनाया है उसके मुँहतोड़ जवाब के लिए ही हम लोगों ने एक नयी पार्टी का निर्माण किया है। आज आप कान खोलकर सुन लें कि चाहे आजादी हमें जब भी मिले, लेकिन आपकी इस राक्षसी नीति का हम हर तरह से सामना करेंगे।'

गर्वनर साहब का शरीर काँप रहा था।

उसने आगे कहा, 'इस बार हमने चेतावनी के रूप में आपसे आग्रह

किया है। अगर स्थिति में सुधार न हुआ, अगर आपकी नीति में तबदीली न आयी तो दूसरी बार न चेतावनी होगी न आग्रह। हमें हर कार्य करने के लिए विवश होना पड़ेगा। बस।'

फिर धाँय! धाँय!! धाँय!!! और देखते-देखते पाँचो चालक उसी विशाल नगरी में खो गये।

और पगला वहीं सड़क के किनारे खड़ा नाच रहा था।

८

सवेरे सड़क पर अखबारवाला चिल्लाता चला जा रहा था—'गवर्नर साहब पर गोली का निशाना! गवर्नर महोदय बाल-बाल बचे!'

सारे नगर में बड़ी हलचल थी। होटलों में, दुकानों पर, गलियों में, कुलियों में, जहाँ देखिए वहीं लोग इसी विषय पर वार्तालाप कर रहे थे। प्रत्येक अपनी अलग-अलग दलीलें दे रहा था। कोई कहता, 'वे लोग गवर्नर की हत्या करने आये थे।' तो दूसरा तर्क देता, 'अमाँ यार, अगर हत्या ही करनी होती तो मार न डाला होता। खड़े-खड़े उनसे बातें क्यों करते? इस बार उन लोगों ने चेतावनी दी है, चेतावनी!' तीसरा तब समाचारपत्रों की दलीलें देता। किस्सा-कोताह, सब अपनी-अपनी कह रहे थे। सही बात किसी को मालूम नहीं थी। समाचारपत्रों को भी पढ़कर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता था। फिर भी लोगों में प्रसन्नता थी। एक ओर नयी किरण फूट रही थी। जन-साधारण में उत्साह की वृद्धि हुई। साम, दाम, दंड और भेद राजनीति में सभी का उपयोग होना चाहिए। निःसन्देह हम अहिंसा के पुजारी हैं, परन्तु जब हिंसा के लिए विवश किया जाये तो इसमें हमारा क्या दोष?

नन्दा ने पत्रिका एक ओर रखते हुए पूछा, 'कुछ पता लगा पिताजी?'

'कुछ नहीं।' कुरता उतारते हुए रघुनाथराव बोले, 'बेचारे कलक्टर साहब बड़े परेशान हैं।'

'आप तो टहलने गये थे। कलक्टर साहब के बँगले कब पहुँच गये?'

'जा रहा था टहलने, लेकिन रास्ते में कलक्टर साहब की गाड़ी लिये ड्राइवर मिल गया। रोककर कहने लगा—सरकार के यहाँ जा रहा था। साहब बहादुर ने याद किया है। मैं चला गया। कुछ समय तक उनसे बातें होती रहीं। चलते समय वह बोले—राव साहब, मेरी नाक रख लीजिए, नहीं मैं कहीं का भी न रहूँगा और....और आपको युक्त प्रान्त की सरकार की ओर से....। मैंने बीच में टोकते हुए उन्हें आश्वासन दिया—घबराइए नहीं। मैं भरपूर प्रयत्न करूँगा और यदि ईश्वर ने चाहा तो कुछ-न-कुछ पता लग ही जायेगा।'

'मैं समझती हूँ, आप उसी पगले को पकड़ेंगे। आपको पूरा सन्देह उसी पर है न?'

'बिलकुल। इसमें भी कुछ सोचना है। तुम नहीं जानती बेटी, यह सारा खेल वही कर रहा है।'

'किन्तु मेरी समझ में यह नहीं आता कि आपको उसके ऊपर सन्देह क्यों है? वह ऐसा तो नहीं मालूम पड़ता। अभी उस दिन की बात है। मुझसे भेंट हुई थी। आपसे माफी माँग रहा था उस दिन की बेअदबी के लिए। वह इस प्रकार का कोई कार्य कर सकता है, मुझे विश्वास नहीं। और मैं तो कहती हूँ कि यदि थोड़ी देर के लिए यही मान लिया जाये कि सारा खेल उसी का है, जैसा आप कह रहे हैं, तो इसमें आपको दिलचस्पी क्यों?'

'इसलिए कि मेरा और मेरे विभाग का यही काम है।'

'और यदि आप ऐसा न करें तो सरकार की दृष्टि में दोषी ठहराये जायेंगे, क्यों?'

'बिलकुल।'

'परन्तु जनता की दृष्टि में आपका क्या स्थान होगा, यह विदित है?'

'नेक, ईमानदार और देशभक्त। लेकिन इस कोरी नेकी और देश-भक्ति से मेरा पेट तो नहीं भर सकेगा। प्रत्येक को पेट भरने के लिए काम करना ही पड़ता है।' रघुनाथराव का उत्तर ठीक ही था।

'और जो काम नहीं करते उनका पेट भर रहा है या नहीं ?'

'पेट भरने से क्या होता है ? दुनिया में इन्सान आया है इज्जत की जिन्दगी गुजारने के लिए।'

'तब तो आपके कथनानुसार, गाँधीजी, राजेन्द्रप्रसाद जवाहरलाल, वल्लभभाई पटेल आदि नेताओं तथा स्वतंत्रता के हेतु जीवन की बाजी लगानेवाले कार्यकर्ताओं की कोई इज्जत ही नहीं ?'

'इज्जत क्यों नहीं ? परन्तु मेरी और उनकी प्रतिष्ठा में अन्तर है। वे जूतों की ठोकरों से दाँत तुड़वा सकते हैं। हंटरों की पीड़ा को बर्दाश्त करके भी इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे लगा सकते हैं। मा-बहिनों की गाली सुन सकते हैं। हाथों और पैरों के नाखूनों में सूजे धँसवा सकते हैं और अवसर पड़ने पर सूली के तख्ते पर भी झूल सकते हैं, परन्तु मैं तो यह सब नहीं कर सकता नन्दा ! मेरे जीवन का सिद्धान्त कुछ और है।'

'तो मैं कहाँ कहती हूँ कि आप भी इतना करें ही,' नन्दा पिता के विचारों से भली-भाँति परिचित थी, 'यदि आप जीवन को सुख से व्यतीत करने के पक्षपाती हैं तब भी आपको अपने देश और समाज का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा। इससे अलग रहकर आप सुखी नहीं रह सकते। जब सम्पूर्ण देश इन साम्राज्यवादियों से मुक्ति पाने के लिए कटिबद्ध हो गया है तो क्या आप सरीखे कुछ व्यक्तियों के सहयोग से ये बहुत दिनों तक टिक सकेंगे ? इसलिए मेरी समझ में आप भी अवसर से लाभ उठाकर गद्दार होने से बच जायें अन्यथा....'

'चुप रहो,' रघुनाथराव ने डाँटा, 'क्या ऊँची शिक्षा इसलिए दिलाई जाती है कि लड़के अपने पिता-माता की मर्यादा भूल जायें ? तुम्हारे और मेरे अनुभवों में बड़ा अन्तर है। तुम्हें अंग्रेजी सरकार की शक्ति का अनुमान नहीं। अभी शायद देश को स्वतन्त्र होने में सैकड़ों वर्ष लग जायेंगे।

अगर इन कांग्रेसियों की तरह मैंने भी मूर्खता की होती तो यह मोटर और बँगले न होते। एक अठारह सौ सत्तावन में क्रान्ति हुई थी और अब एक बयालीस में हुई है। दोनो के परिणाम सामने हैं। अहिंसा-अहिंसा चिल्लाने से कहीं स्वराज्य मिला है?' और वह उठकर चले गये।

६

कलक्टर साहब के बँगले पर सुपरिंटेंडेंट पुलिस, डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस, शहर कोतवाल और मिलिट्री के कुछ बड़े अधिकारी एक कमरे में बैठे बातें कर रहे थे। थोड़ी देर में रघुनाथराव भी आ पहुँचे। उनके आते ही कलक्टर साहब ने पूछा, 'कुछ पता लगा?'

'अभी पता लगा जाता है।' कुर्सी पर बैठते हुए रघुनाथराव बोले, 'उस पागल बाँसुरीवाले को तो जानते ही होंगे कोतवाल साहब?'

'जी, बहुत अच्छी तरह। सैकड़ों बार मैंने उसे कोतवाली के सामने ही बजाते हुए देखा है। आजकल उसका दिमाग कुछ सनक गया है।'

'आप उसे पागल न समझिए। यह सारी माया उसी की है। वह बना हुआ पागल है। अच्छा! आप प्रत्येक चौकी को फोन कर दें कि वह पागल जहाँ भी दिखाई पड़े, फौरन पकड़कर यहाँ लाया जाये।'

'अच्छी बात है।' कहकर कोतवाल साहब दूसरे कमरे में चले गये।

'लेकिन उस पर आपको शक क्यों है?' कलक्टर ने पूछा।

'कुछ दिनों पहले, ऐसा मेरा अनुमान है, यह आदमी कलकत्ते में भी रह चुका है। इसकी एक बड़ी पार्टी है, जो आजकल सारे देश में गुप्त रूप से सरकार के विरुद्ध काम कर रही है। इसको पकड़कर आप किसी-न-किसी निष्कर्ष पर अवश्य पहुँच जायेंगे, किन्तु इसके लिए आपको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।'

'फिर तत्काल कोई लाभ तो नहीं निकला !' कलक्टर बोला।

'इसे तो आप समझिए। आपके प्रदेश का मामला है। मैं इस पर जोर भी नहीं दे सकता। खैर, उसे आने दीजिए। देखिए बातों से क्या निकलता है।'

इतने में कोतवाली के सेकंड इंचार्ज ने कलक्टर साहब को आकर सैलूट मारा।

'कहाँ था यह ?' कलक्टर ने पूछा।

'वहीं शिवाले के पास बैठा बक-झक कर रहा था।'

'तुम्हारे ऊपर सरकार को सन्देह है।' रघुनाथराव ने कहा।

'ठीक है।' पगले ने उत्तर दिया।

'क्या ठीक है ?'

'जो आप कहते हैं।'

'तुम्हें गिरफ्तार कर लिया गया है।'

'बहुत अच्छा हुआ। फिर यहाँ क्यों बुलाया। जेल भेज दिया होता।'

'तुम मुझे तो पहचानते होगे ?' रघुनाथराव ने चिढ़ते हुए पूछा।

'कानपुर की जनसंख्या सात-आठ लाख है थानेदार साहब।'

रघुनाथराव अब अपने को सँभाल न सके। उन्होंने कुर्सी से उठते हुए कहा, 'आबादी का ज्ञान आपको अच्छा है।' और वह उसको मारने लगे। मारते-मारते उन्होंने उसे जमीन पर गिरा दिया। फिर पास में खड़े दारोगाजी से बोले, 'जरा आग तो मँगवाइए। आज इससे सारी बातें उगलवाकर ही छोड़ूँगा।'

आग आ गई। रघुनाथराव ने उसकी बनियाइन निकलवाई, और फिर धीरे-धीरे उसकी दाढ़ी जलाने लगे। दाढ़ी जलाते जाते थे और बीच-बीच में पूछते भी जाते थे, 'बोलो, तुम्हें कुछ मालूम है। बता दो नहीं तो मैं तुम्हारे लिए बड़ा बुरा साबित हूँगा।' किन्तु पगला चुपचाप उनकी ओर टकटकी लगाये देख रहा था। दाढ़ी जल गई। चेहरा जलकर काला पड़ गया। किन्तु उसने उफ् तक नहीं की।

दाढ़ी जल चुकने पर उसने रघुनाथराव से पूछा 'बस ? अभी तो बाल भी हैं। जला लीजिए, परन्तु आप-जैसे पिट्ठुओं से अब यह विदेशी सरकार नहीं टिक सकती।' पगला हँसने का प्रयत्न करने पर भी हँस न सका।

'राव साहब, लेट हिम गो (इसे जाने दीजिए)।' कलक्टर ने कहा।

पगले का बाहर कर दिया गया।

'आपका अनुमान गलत है राव साहब। यह आदमी ऐसा मालूम नहीं पड़ता।'

'नहीं कलक्टर साहब। है सब-कुछ यही, लेकिन....जाने दीजिए। जब तक यहाँ हूँ भरपूर प्रयत्न करूँगा।'

'जरूर। इसे भूलिएगा नहीं। मैं जीवन-भर आपके उपकार से दबा रहूँगा।' फिर फौजी अधिकारियों की ओर मुँह फेरता हुआ कलक्टर बोला, 'आप लोग भी सतर्कतापूर्वक इसकी खोज करें। अजीब बात है।'

सब लोग उठ खड़े हुए।

१०

सन्ध्या को जब रघुनाथराव लौटे तो उनकी पत्नी बोलीं, 'बड़ी देर कर दी आज। छुट्टियों में तो कम-से-कम आराम कर लिया करो। नौकरी तो सदैव करनी ही है।'

'ऐसे ही, लोगों से मिलने चला गया था। सोचा इस मास में जाना है, सब लोगों से मिल लें, नहीं तो तुम्हारे पास उलहने आते ही रहेंगे। नन्दा कहाँ है ?'

'कहीं कमरे में बैठी पढ़ रही होगी। तुम्हारे जाने के बाद बहुत समय तक रोती रही। कह रही थी, पिताजी आज मुझसे बहुत बिगड़ गये।'

रघुनाथराव मुस्कराते हुए बोले, 'लड़की है न ? उसे क्या मालूम! अरे भई, दुनिया में जब तक रहो शान से रहो। नहीं घुरहू-कतवारू की भाँति सभी जीवित रहते हैं। नन्दा ! ओ नन्दा !!' उन्होंने पुकारा।

'जी, पिताजी !' नन्दा कमरे से बोली।

'इधर आओ बेटे।'

रघुनाथराव नन्दा को प्यार करते हुए बोले, 'किसी भी मा-बाप को अपने बच्चे से अप्रसन्न होते हुए सुना है ? अरे, यह जो कुछ करता हूँ तुम्हारे लिए ही तो करता हूँ। न तुम्हारी मा बाँध ले जायेगी और न मैं। आज स्कूल काहे से गई थी ? गाड़ी तो मैं ले गया था।'

'अपनी साइकिल से।'

'साइकिल से न जाया करो। तुमको कई बार मैंने मना किया है। बुरी....'

'मालिक, फोन पर कोई साहब आपसे बातें करना चाहते हैं।' नौकर ने बीच में टोका।

'यहीं उठा ला। कलक्टर साहब होंगे। और कौन होगा ?'

नौकर फोन ले आया।

'हलो ! मैं राघुनाथराव बोल रहा हूँ....आप....नमस्ते।' रघुनाथराव फोन पर मुस्कराने लगे, 'जी....जी....जी....हाँ....जी....अच्छी बात है....अवसर अच्छा है, अगर आप आज्ञा दें तो मँगनीवाली रस्म भी पूरी कर दें। अच्छा रहेगा। लड़की और लड़का दोनो साथ-साथ होंगे ....जी....अच्छी बात है....लौटते समय आपसे मिलता हुआ जाऊँगा....।'

'कौन था ?' नन्दा की माताजी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

'था कौन ? तुम्हारे समधी साहब इलाहाबाद से बोल रहे थे। वीरेश इंग्लैंड से लौट रहा है। बीस तारीख को यहाँ हवाई जहाज से आ जायेगा। कह रहे थे दो-तीन दिन यहाँ रुककर फिर इलाहाबाद जायेगा। उसके मित्रों ने यहाँ रुकने पर जोर दिया है। आज तारीख कौन-सी है नन्दा ?'

'बारह।'

'चलो, यह काम भी अच्छे संयोग से हुआ; नहीं, छुट्टी लेकर फिर आना पड़ता। रही विवाह की बात, वह लड़की-लड़के पर है। इसके लिए विशेष चिन्ता नहीं। क्यों ठीक है न?' नन्दा की मा से रघुनाथराव ने पूछा।

'हाँ, ईश्वर है। सब ठीक ही होगा।'

'एक बात तो भूल ही गया था।' नन्दा की ओर देखते हुए रघुनाथ-राव फिर बोले, 'देखो नन्दा, तुम जानती हो, हम लोग पुराने चलन के आदमी ठहरे और इसी लिए हम लोग जो भी काम करेंगे, पुराने चलन के अनुसार ही करेंगे। कारण, मेरा या तुम्हारी मा का पालन-पोषण उसी वातावरण में हुआ है। फिर भी, यह सब होते हुए मैं आज के युग को देख रहा हूँ। इसका अनुभव करते हुए इसके साथ-साथ चलने का प्रयत्न भी करता हूँ और इस कारण मैं नहीं चाहता कि बिना तुम्हारी अनुमति के मैं कोई ऐसा कार्य कर बैठूँ जो तुम्हारे लिए आगे चलकर दुःखदायी सिद्ध हो। रहा लड़के का प्रश्न, उसे न तो तुम्हारी मा ने देखा है और न तुमने। तुम लोगों ने तो केवल फोटू ही देखी है। यदि फोटू देखकर तुम्हारी....'

'इसमें पूछने की कौन-सी बात है पिताजी। आप जो कुछ भी करेंगे मेरे सुख के लिए ही करेंगे। पर विवाह मेरे एम० ए० पास हो जाने के बाद ही होगा।' वह उठकर चली गई।

'पढ़ाई के पीछे तो दीवानी बनी रहती है!' नन्दा की माताजी हँसने लगीं।

और उधर नन्दा अपने बक्स से वीरेश की फोटू निकालकर देख रही थी।

११

बूँदें पड़ रही थीं। परन्तु हवा में तीव्रता होने के कारण जोरों से वर्षा होने की सम्भावना नहीं पायी जा रही थी। सन्ध्या समाप्त होते ही आचार्य अपनी मोटर-साइकिल तेजी के साथ उड़ाते हुए नगर के बाहर हो गये। महोबा पहुँचते-पहुँचते उनको मालूम हुआ कि उनकी साइकिल में पेट्रोल बहुत थोड़ा है। उन्होंने गाड़ी की गति और बढ़ा दी। उन्हें जंगल तक तो पहुँचना ही था। और यही हुआ। जंगल तक पहुँचते-पहुँचते पेट्रोल समाप्त हो गया। गाड़ी रुक गई। वह उतर पड़े और धीरे-धीरे मोटर-साइकिल को घसीटते हुए जंगल में घुसे।

झोपड़ी के द्वार को उन्होंने थपथपाया ही था कि अन्दर से मधुकर ने खाँसते हुए पूछा, 'कौन?'

आचार्य ने फिर थपथपाया।

मधुकर द्वार खोलते ही चौंक पड़ा। 'आचार्य! आचार्य, यह क्या!!' वह रुआँसा हो गया था।

आचार्य ने मधुकर की पीठ पर हाथ फेरते हुए ऊपर चलने के लिए संकेत किया।

ऊपर आचार्य को देखते ही भाभीजी ने गले से लगा लिया और फूट-फूटकर रोने लगीं। तबीयत खराब होने के कारण आज वह प्रचारार्थ बाहर नहीं जा सकी थीं।

आचार्य का सारा चेहरा सूजकर लाल हो रहा था। अब वह मुँह तक खोलने में असमर्थ थे। पीना और खाना तो दूर। उन्होंने अपने को धीरे से छुड़ाते हुए, मधुकर से दवाइयों के बक्स की ओर संकेत किया। एक मलहम निकालकर मधुकर के हाथों में देते हुए वह वहीं भाभीजी की जाँघों पर सिर रखकर लेट गये। मधुकर ने कब मलहम लगाना बन्द किया यह आचार्य को नहीं मालूम। वह सो गये थे।

तीसरे दिन गालों की सूजन बहुत-कुछ उभरी हुई थी। अब वह कुछ-

कुछ बोलने भी लगे थे। मधुकर ने सब कहीं सूचना भेज दी थी। आज सब लोग ऊपर एकत्रित थे। उनमें कानपुर के कुछ कार्यकर्ता भी थे। आचार्य को प्रसन्न देखकर और लोगों में भी प्रसन्नता आ गई थी। आचार्य ने भाभीजी की ओर देखते हुए कहा, 'तुमने तो देखा ही नहीं, मैं सच कहता हूँ उस दिन जिस फुर्ती और बुद्धिमानी के साथ इन लोगों ने काम किया वह प्रशंसनीय है। मैं तो मारे खुशी के वहीं नाचने लगा था। और मधुकर की तुमसे क्या बताऊँ। इसकी तो उस दिन शान ही निराली थी।' सब लोग हँसने लगे।

लोगों को यह जानने की बड़ी उत्सुकता थी कि आचार्य की दाढ़ी कैसे जली ? पर इस बात को पूछे कौन ? प्रत्येक इसी आशा में थे कि सम्भवतः आचार्य स्वयं इसे बतायेंगे, किन्तु वह इस विषय को क्यों उठाने लगे। अन्त में दिनकर से नहीं रहा गया। पूछ ही बैठा, 'आचार्य, आपने यह नहीं बताया कि आपकी दाढ़ी जलाई किसने ?'

सब लोग एक स्वर से बोल उठे, 'यही हम लोग भी जानना चाहते हैं।'

आचार्य ने बड़े शान्त स्वर में कहा, 'इसके पीछे कोई विशेष घटना नहीं है। यह सब तो होता ही रहता है और भविष्य में भी होता रहेगा। छोटी-छोटी बातों पर कहाँ तक ध्यान दिया जायेगा।'

'जो बातें आपके लिए छोटी हैं वे हमारे लिए तो छोटी नहीं।' कम बोलनेवाला फिलासफर उदय बोला। उसकी बोली तेज थी। उसे सब लोग फिलासफर कहकर ही पुकारते थे।

आचार्य ने सारी बातें बताते हुए कहा, 'जिसका जो काम है वह तो करेगा ही और हमारा जो काम है उसे हम करेंगे, फिर उनके कार्यों का बुरा क्यों माना जाये ?'

'मैंने उस बार भी,' अंजना बोली, 'आप लोगों के सामने यही प्रश्न रखा था कि चाहे जिस प्रकार भी हो रघुनाथराव को अपने रास्ते से हटाइए, परन्तु....'

'परन्तु,' बीच में टोकते हुए आचार्य बोले, 'सवाल तो यह उठता

है अंजनादेवी, कि आप इस प्रकार कितनों को अपने रास्ते से हटायेंगी। यदि रघुनाथराव के हटने से काम चल जाता तो हम वह भी कर बैठते, लेकिन उसके हटते ही दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा रघुनाथराव आता रहेगा। आप यह चाहें कि हिंसा के द्वारा अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नींव जा सकेगी तो असम्भव है। हमारे देश की परिस्थिति पश्चिम के अन्य देशों से भिन्न है। हम सब प्रकार से साधनहीन हैं। दूसरे बयालीस की क्रान्ति के बाद देश की दशा और भी विषम हो गई है। साथ ही अंग्रेजों के सहायक यहाँ के जमींदार और पूँजीपति अब और भी खुलकर जन-साधारण का शोषण करने लगे हैं। नौकरशाही भी अब अपने से बाज नहीं आयेगी। ऐसी परिस्थिति में हमें बड़ा सँभल-सँभलकर कार्य करना है।'

'तब क्रान्तिकारियों की भाँति छिपकर काम करने से क्या लाभ? जब आप हिंसा में विश्वास नहीं रखते तो फिर गाँधीजी के साथ क्यों न काम किया जाये? जेल जाने से हम लोग डरते तो हैं नहीं?' अंजना ठीक ही पूछ रही थी।

'हिंसा अनुचित है, ऐसी धारणा तो कभी मैंने व्यक्त की नहीं। आवश्यकतानुसार हिंसा करना गुनाह नहीं, अगर गुनाह होता तो हम-आप मिलकर इस प्रकार की पार्टी बनाकर जंगलों और पहाड़ों में क्यों मारे-मारे फिरते? मेरे कहने का भावार्थ था कि हमें पूर्णरूप से क्रान्ति-कारियों के रास्ते पर नहीं चलना है। हमें अहिंसा और हिंसा दोनो के बीच का मार्ग अपनाना है। जनता और जनहित के लिए हम गोली भी चला सकते हैं और अवसर आने पर गोली खाने के लिए सीना भी खोल सकते हैं। हमारे सामने इस समय केवल एक ध्येय है और वह है देश की जागृति को कायम रखना। बड़ी कुर्बानियों और त्याग के उपरान्त देश का एक-एक व्यक्ति स्वराज्य के लिए लालायित हो उठा है। अगर इस बार फिर चुके तो दासता की बेड़ियाँ सदियों तक के लिए जकड़ जायेंगी।'

'तो रघुनाथराव को....' मधुकर ने धीरे से पूछा।

आचार्य ने बीच में टोका, 'रघुनाथराव को रास्ते से हटाना तुम्हारे लिए बहुत कठिन कार्य नहीं है मधुकर! परन्तु जितना यह कार्य हमारे लिए हितकर सिद्ध होगा उतना ही एक समुदाय के अन्दर नवीन भावना को जन्म देगा, जो आगे चलकर देश के लिए जटिल समस्या बन सकती है। उतावले न हो। समय की गति को देखकर चलनेवाला ही मनुष्य योग्य और कार्यकुशल समझा जाता है। यद्यपि भावावेश में आकर लोग उसे अवसरवादी कह देते हैं, परन्तु उसकी सफलता की महत्ता को भुलाया नहीं जा सकता। धैर्य रखो, सब ठीक हो जायेगा।'

मधुकर चुप हो गया।

भाभीजी बोलीं, 'एक सूचना बातों के सिलसिले में बतलाना भूल ही गई थी। कलकत्ते से समाचार आया है कि वीरेश बीस तारीख को इंग्लैंड से वायुयान द्वारा कानपुर पहुँच रहा है। वह कानपुर रुककर तुमसे मिलकर फिर घर जाना चाहता है। इसलिए मैं समझती हूँ कि उस दिन हवाई अड्डे पर किसी को जाना चाहिए।'

'उसे इस स्थान के बारे में जानकारी नहीं है। बीस तारीख को उदय हवाई अड्डे पर चले जायेंगे। कल मैं भी शहर चला जाऊँगा। सूचना मुझे वहीं दी जाये।' आचार्य ने कहा।

'किन्तु कल कैसे जाओगे? तबीयत तो तुम्हारी ठीक हो जाये।' भाभीजी का स्नेह बोल रहा था।

'नहीं—नहीं! अभी आचार्य को दो-एक दिन और आराम करना चाहिए।' और लोगों ने भी दबाव डाला।

'काम तो करना ही है। चाहे एक दिन पहले या एक दिन बाद। अब आप लोग आराम कीजिए। रात अधिक जा चुकी है।' और आचार्य उठ खड़े हुए।

१२

कूपर एलन फैक्टरी की अभी-अभी छुट्टी हुई थी। मजदूर मिल से निकलने लगे थे। पगला वहीं चौराहे पर बैठा कुछ बुदबुदा रहा था। एक जत्था, जो पन्द्रह-बीस मजदूरों का निकला तो उनमें से एक ने पूछा, 'क्यों यार, दाढ़ी तो जलाई ही साथ-साथ अपनी सूरत भी जला ली?'

पगले को अवसर मिल गया। कहने लगा, 'दाढ़ी भी यार, कोई अपने मन से जलाता है? परन्तु निर्धनों की कौन सुनता है? तुम लोगों ने सुना होगा कि जिस दिन गवनर साहब की गाड़ी रोककर कहा गया था कि वह मजदूरों के खाने और कपड़े का माकूल इन्तजाम करें वरना नतीजा बुरा होगा, उसी के दूसरे दिन कलक्टर साहब ने मुझे पकड़वा मँगाया।' भीड़ इकट्ठी होती जा रही थी, 'कलक्टर साहब मुझसे कहने लगे कि सारे झगड़े की जड़ तू ही है; सरकार के खिलाफ बगावत फैलाता फिरता है। मैं बहुत गिड़गिड़ाया, रोया, किन्तु कमजोरों की कौन सुनता है? उन लोगों ने मेरी दाढ़ी में आग लगा दी, हकीकत जानने के लिए।' भीड़ अब काफी इकट्ठी हो चुकी थी। पगला आँखें पोंछता हुआ बोला, 'पराधीन सपनेहु सुख नाही—तुलसीदासजी ने सही कहा है। मेहनत करें हम और मजा उड़ायें लन्दन के गोरे और उनकी गोरी मेमें। इतना बड़ा हमारा देश, इतनी हमारे पास दौलत, लेकिन हमें एक जून भी खाना ठीक से नहीं मिल पाता। बदन पर किसी के साबूत कपड़े नहीं। घर के बच्चे खाने-पीने को तरसते हैं, परन्तु अब मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इन जालिमों की हुकूमत बहुत दिनों तक नहीं चल सकेगी। आपने इन्कलाब की अहमियत को समझ लिया है और आगे ईश्वर चाहेगा तो फिर इन्कलाब होकर रहेगा। आप-अपनी....'

इतने में एक कार हार्न बजाती हुई आकर रुकी। कुछ मजदूर हटे और कुछ वहीं सड़क पर खड़े रहे। कार के अन्दर से किसी ने झाँका और उसने पीछे करने के लिए ड्राइवर को आज्ञा दी। कार थोड़ी दूर

पीछे हटकर रुक गई। उसमें से एक युवती उतरी और वह भी मजदूरों के पीछे आकर खड़ी हो गई। पगला कहता ही जा रहा था, 'गुलामी की बेड़ियों को काटकर रहेंगे। देश आजाद होकर रहेगा।' वह रुका। सिर खुजलाकर दाढ़ी पर हाथ फेरता रहा, फिर थूकता हुआ बोला, 'अँग्रेजी सरकार अब टिक नहीं सकती। हम बयालीस से भी बड़ी क्रान्ति करेंगे। हमारे धन पर मौज उड़ानेवाले सचेत हो जायें। ताना-शाही अब बहुत दिनों तक नहीं चलेगी। मजदूर अब फैसला करके रहेंगे। मजदूर अब....मजदूर....।' कहता हुआ पगला नवाबगंज की ओर चल पड़ा।

'ड्राइवर !' उस युवती ने पुकारा

'जी !' ड्राइवर गाड़ी लेकर आया

'तुम गाड़ी लेकर चलो। मैं टहलती हुई आ जाऊँगी।'

'जी !' वह गाड़ी लेकर चला गया।

तेजी से पैर बढ़ाती हुई वह पगले के समीप पहुँचकर बोली, 'मैंने कहा, बाँसुरीवाले मित्र को नमस्कार।'

चौंककर पगले ने मुड़ते हुए देखा। 'आप ! नन्दादेवी !!'

'जी हाँ, पागलों का भाषण सुन रही थी। आपकी दाढ़ी कैसे जल गई ? मैं तो पहले आपको पहचान न सकी, लेकिन आपकी वाणी में जो आकर्षण है उसे कौन भूल सकता है ? भुलाना बड़ा कठिन है। यह हुआ कैसे ?'

'ऐसे ही जल गई।' बाँसुरीवाले ने टाला।

'फिर भी कोई कारण तो होगा ही।'

'कोई विशेष कारण नहीं। तीन-चार दिन पीछे की बात है। एक दिन रात को चमनगंज में सड़क के किनारे दियासलाई जलाकर सोने के लिए स्थान देख रहा था। अचानक लपट दाढ़ी में छू गई।' आचार्य ने बात पलट दी।

'आपने दवा भी न लगवाई होगी ?'

'यह सब चलता ही रहता है नन्दादेवी। आप अपना समाचार सुनाइए। सचमुच आपसे मिलकर मेरे चित्त को बड़ी शान्ति मिलती है।'

'बीस को आपका निमंत्रण है।'

'किस खुशी में ?'

'मेरी मँगनी होने जा रही है न। आपको उस दिन मेरे यहाँ अवश्य आना होगा। या आप स्थान बतायें, जहाँ मैं स्वयं आकर के ले जाऊँ। इस बार आपका बहाना न चलेगा।'

'ले....लेकिन....आप तो अभी पढ़ रही थीं ?' बाँसुरीवाले ने कुछ चिन्तित होकर पूछा।

'अभी केवल मँगनी हो रही है। विवाह एम० ए० के बाद करूँगी। पिताजी की बड़ी इच्छा थी, इसी लिए कर लिया।'

'परन्तु इतने दिनों तक वह....प्रतीक्षा कर सकेंगे ?' बाँसुरीवाले ने अपनी वास्तविकता को छिपाने का प्रयत्न करते हुए मजाक किया।

'तो अब आप मजाक करने लगे ?' नन्दा कुछ शर्मा गई।

आचार्य ने कुछ सोचते हुए पूछा, 'रहनेवाले कानपुर के ही होंगे ?'

'नहीं। इलाहाबाद के। लेकिन बीस को वह भी यहीं रहेंगे।'

'क्यों ?'

'इंग्लैंड से लौट रहे हैं। दो-तीन दिन यहाँ अपने मित्रों से मिलने के लिए रुकेंगे। उसके बाद इलाहाबाद चले जायेंगे।' नन्दा के कहने में कुछ गर्व था।

'बीस....को....इंग्लैंड से....?'

'हाँ-हाँ ! इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ?'

'नहीं ! मेरा मतलब यह था कि बीस तारीख को मँगनी साथ ही साथ होगी ? उसी दिन ?'

'जी हाँ ! तो उस दिन आप आ रहे हैं, या कहिए मैं स्वयं आ जाऊँ।'

'आप तो जानती हैं नन्दादेवी, कि मेरा कोई ठिकाना नहीं। मैं उस

दिन कहाँ रहूँगा, कहाँ नहीं, यह स्वयं मुझे नहीं मालूम। ऐसी दशा में आपको किसी निश्चित स्थान पर बुलाना कहाँ तक ठीक होगा ? आप निश्चिन्त रहें, अगर मेरी तबीयत ठीक रही तो मैं अवश्य आऊँगा। आज्ञा हो तो इधर ही से निकल जाऊँ। मुझे पाँच नम्बर गुमटी जाना है।' बाँसुरीवाले ने नमस्ते की और दूसरी ओर मुड़ गया।

'भूलिएगा नहीं। आने का प्रयत्न कीजिएगा, अवश्य।' नन्दा आगे बढ़ गई।

बाँसुरीवाला सोचता चला जा रहा था—नन्दा की मँगनी वीरेश से तो नहीं हो रही है....?

१३

हवाई अड्डे पर वीरेश ने उदय से हाथ मिलाते हुए रघुनाथराव से परिचय कराया।

'आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।' उदय हाथ मिलाता हुआ रघुनाथराव से बोला।

'आप भी मेरी गाड़ी में आ जाइए।' रघुनाथराव ने आग्रह किया।

'धन्यवाद। मैं अपनी मोटर-बाइक से आया हूँ, किन्तु वीरेश को मैं अपने साथ ले जाने की सोच रहा था।'

'आज के लिए क्षमा चाहूँगा। कल सवेरे जहाँ कहिए वहाँ भेज दूँ या आप स्वयं मेरे यहाँ आ जायें।'

'ठीक है उदय। कल तुम ही आ जाना। साथ-साथ चले चलेंगे।' वीरेश ने आँख मारी।

'तो एक शर्त है राव साहब,' उदय बोला, 'कल दिन-भर फिर वीरेश मेरे यहीं रहेगा और सम्भव है रात को भी न लौट सके। यदि मेरी शर्त

स्वीकार हो तब वीरेश आपके साथ जा सकता है।' उदय ने हँसी के रूप में कहा।

'जी हाँ। बिलकुल मंजूर है। मेरे मकान का पता तो आपको मालूम न होगा?'

'जी नहीं।'

रघुनाथराव ने एक कागज पर लिखकर दे दिया। कार चली गई।

ड्राइवर ने हार्न बजाते हुए बँगले में गाड़ी मोड़ी। नन्दा तो सवेरे से ही सजी-धजी प्रतीक्षा में घूम रही थी। हार्न सुनते ही बोली, 'माताजी! पिताजी आ गये।'

दोनो बाहर निकल आयीं। गाड़ी से एक साँवला-सा तगड़ा, अच्छी सूरतवाला युवक उतरा। उतरते ही उसने नमस्ते के लिए हाथ जोड़े। फिर उसकी आँखें नन्दा से मिलीं। दोनो ने एक-दूसरे को एक पलक देखा, एक-दूसरे को पसन्द किया और आँखें आप ही झुक गईं।

जलपान इत्यादि से निवृत्त होकर वीरेश ने फोन मिलाया—'हलो ....जी, मैं बोल रहा हूँ वीरेश....जी हाँ, पापा....अच्छी बात है....कल तो नहीं, परसों या नरसों तक आ सकूँगा....जी....जब आपको पसन्द है....अच्छी बात है....'

तब उसने पास में बैठे हुए रघुनाथराव को फोन दे दिया—'.... नमस्ते....जी....शायद मुझसे....जी....आप भी आ जाइए न....रात को लौट जाइएगा....तब तो लाचारी है....अच्छा नमस्ते।'

रघुनाथराव ने फोन रखते हुए कहा, 'कल उनका मुकदमा है। आ नहीं सकते।'

*

नन्दा के पढ़नेवाले कमरे के बगलवाला कमरा वीरेश के लिए ठीक किया गया था। खाना खाकर वह अपने कमरे में लेटा ही था कि नन्दा अपने कमरे से निकली।

वीरेश ने पुकारा, 'सुनिए।'

'जी !' नन्दा ने दरवाजे से कहा।

'अन्दर तो आइए।'

नन्दा अन्दर आकर बैठ गई।

'क्या नाम है आपका ?'

'नन्दा।'

'इस वर्ष आपका फोर्थ इयर (चौथा साल) है ?'

'जी हाँ।'

'और इसके बाद क्या विचार है ?'

'एम० ए० करूँगी और इच्छा हुई तो लॉ (वकालत) भी कर लूँगी।'

'आज यहाँ बड़ी तैयारियाँ हैं। शाम को कुछ होनेवाला है ?'

'पता नहीं। आपने किसी से पूछा नहीं ?' नन्दा होठों में हँस रही थी।

'पूछा तो लेकिन उन्होंने कह दिया....पता नहीं।'

'फिर प्रतीक्षा कीजिए। विवशता बड़ी बुरी चीज है।' नन्दा हँसती हुई उठ खड़ी हुई।

'अररर....बैठिए तो सही।'

'अब आप सो जायें। दिन-भर के थके हैं।' नन्दा कमरे के बाहर हो गई। वीरेश सोचता हुआ सो गया।

सन्ध्या को पंडितों का काम समाप्त होने पर कुछ समय तक मजाक चलता रहा। नवयुवक समुदाय अपनी अलग टोली बनाये आपस में एक-दूसरे को बुद्धू बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। वृद्ध लोगों की जमात अलग बनी हुई थी, जहाँ 'साकी शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर' का दौर-दौरा था। बीच-बीच में रघुनाथराव झूमते हुए एक-दो गजलों की पंक्तियाँ पढ़ दिया करते थे। उधर नन्दा की सहेलियाँ वीरेश से उलझी हुई उसे उलझा रही थीं। नन्दा भी संकेतों द्वारा सहेलियों को बढ़ावा दे रही थी। मतलब यह कि घंटे-डेढ़ घंटे यह सब खूब होता रहा, तदुपरान्त भोजन के लिए सब लोग उठे। मेजों पर भी वर्गीकरण पहले की ही भाँति हुआ, जो स्वाभाविक था। अन्तर केवल इतना अवश्य हो गया

कि जब वीरेश सोफा पर बैठने लगा तो उसने धीरे से नन्दा का हाथ पकड़कर सोफे पर बिठा लिया।

इसी बीच अचानक कहीं से किसी ने बाँसुरी फूँकी और सारा वातावरण गूँज उठा। सब लोग इधर-उधर देखने लगे। बजानेवाला बजाता गया। आकर्षण बढ़ता ही गया। लोग मुग्ध होकर झूमने लगे। वीरेश के मुँह से निकला, 'आचार्य !'

'कौन आचार्य ?' नन्दा ने पूछा।

'मेरा मित्र है। ठीक ऐसी ही बाँसुरी बजाता है। लोग उसको भी सुनकर झूम उठते हैं।'

'यह तो यहीं का एक पगला है। सड़कों पर घूम-घूमकर बाँसुरी बजाया करता है, किन्तु आदमी बड़े सिद्धान्त का है। कल यदि भेंट हुई तो आपसे मिलवाऊँगी। बोलता भी बहुत सुन्दर है।'

वीरेश ने आश्चर्य से नन्दा की ओर देखा।

बजानेवाला लगभग आधे घंटे तक बाँसुरी पर मंगल धुन बजाता रहा।

१४

सवेरे आठ बजे उदय रघुनाथराव के बँगले पहुँच गया। वीरेश बोला, 'आये अच्छे समय से। चाय पीकर चलते हैं।'

'नहीं। मैं तो अभी-अभी चाय पीकर चला आ रहा हूँ।'

'तो क्या हुआ। एक प्याली यहाँ भी पी लीजिए।' नन्दा ने चाय की प्याली उदय की ओर बढ़ायी।

'ले लो उदय। इनके हाथ का तो लेना ही पड़ेगा।....अरे हाँ, तुमसे परिचय कराना तो भूल ही गया। यह हैं हमारी होनेवाली....और यह हैं मेरे साथी उदय।'

दोनो ने हँसते हुए हाथ जोड़े।

'तो अब मैं,' वीरेश उठता हुआ बोला, 'चल रहा हूँ। रात को मेरी प्रतीक्षा न कीजिएगा। सम्भव है मैं न लौट सकूँ।'

'क्यों?' नन्दा ने पूछा।

'कुछ इनके प्रति मेरा कर्त्तव्य है और कुछ इनका अधिकार भी।'

'तो क्या रात-भर अधिकार और कर्त्तव्यों की ही पूर्ति होती रहेगी?'

'अजी साहब, रात-भर क्या चीज है! कितनी रातें गुजर जाती हैं इस पूर्ति के करने-कराने में।' वीरेश मुस्कराया।

नन्दा ने कनखियों से देखा। फिर बोली, 'माताजी से कह दिया है?'

'हाँ, रात में बातचीत हो गई थी।'

और दूसरे ही क्षण मोटर-साइकिल बँगले से बाहर हो गई।

नगर से बाहर निकलने पर उदय ने पूछा, 'इस लड़की से तुम्हारी शादी पक्की हो गई है?'

'पक्की तो दूर, रात मँगनी भी हो गई। अच्छी लड़की है। तुम्हें पसन्द नहीं?' वीरेश के स्वर में उत्सुकता थी।

'लड़की पसन्द है, परन्तु उसके घरवाले पसन्द नहीं।'

'क्यों?'

'चलो, वहीं बतलाएँगे।'

'कहाँ?'

'जहाँ चल रहे हैं।'

'और आचार्य?'

'रात को यहाँ से जा चुके हैं।'

'क्या बहुत दूर कोई गुप्त स्थान बना रखा है?'

'बहुत बढ़िया। देखकर चकित हो जाओगे।'

'तो अब आचार्य पहलेवाला आचार्य नहीं रहा।'

'नहीं।'

कुछ समय तक दोनो मौन रहे। मोटर-साइकिल उड़ती चली जा

रही थो। उदय बोला, 'हमीरपुर है। तुमने इस भूमि को कभी देखा न होगा। यह बुन्देलखण्ड की भूमि है, जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने चौदह वर्ष के उस लम्बे काल में लगभग दस वर्ष का समय यहीं व्यतीत किया था। इसी भूमि पर आल्हा-ऊदल ऐसे महारथियों की तलवार भी चमकी थी। यह वही भूमि है जहाँ छत्रसाल और महारानी लक्ष्मीबाई सरीखे सेनापतियों ने जन्म लेकर इसे पवित्र किया था। इस भूमि के एक-एक कण में आकर्षण और वीरत्व की भावना निहित है, पर आज' वीरेश को ज्ञात था कि उदय प्रारम्भ से कितना भावुक रहा है। वह चुपचाप सुन रहा था। 'इस भूमि पर दरिद्रता नग्न नर्तन कर रही है। हजारों लोग तो ऐसे हैं जिन्होने महुआ के अतिरिक्त और कुछ खाया ही नहीं। गेहूँ की रोटियाँ तो शायद होली और दशहरे पर ही बनती हों। लोगों के पास तन ढकने के लिए भी वस्त्र नहीं। स्त्रियाँ अपनी लज्जा को छिपाने में असमर्थ हैं और पैसेवाले उसका अनुचित लाभ उठाने में तल्लीन।'

उदय का वास्तव में गला भर आया था। उसने मोटर-साइकिल की गति बढ़ा दी। अब वे महोबा के बीच से गुजर रहे थे।

मोटर-साइकिल उसी प्रकार जंगलों में होती हुई झोपड़ी के सामने आकर रुक गई। मधुकर बाहर बैठा था।

'तुम वीरेश, इनको नहीं जानते होगे,' उदय ने मधुकर का परिचय कराते हुए कहा, 'पार्टी के नये सदस्य हैं। बड़े उत्साही और कार्यकुशल। आचार्य तो ऊपर होंगे?'

'हाँ, सब लोग ऊपर हैं। आप लोगों की ही प्रतीक्षा हो रही है।'

मोटर-साइकिल को एक झाड़ी में खड़ी करके तीनों झोपड़ी से होते हुए ऊपर चले। बीच-बीच में वीरेश कहता जाता था, 'स्थान तो गजब का ढूँढ़ निकाला है यार।'

वीरेश को देखते ही आचार्य गले से लिपट गये। कई वर्षों बाद आज दोनो मित्रों का मिलन हुआ था। मित्रता के प्रेम में जो आनन्द है वह सच्चे मित्र ही जानते हैं।

वीरेश बैठते ही चौंक उठा, 'भाभीजी ! आप यहाँ !!' उसने उनके पैर स्पर्श किये।

'बड़ी-बड़ी कहानियाँ हैं। बैठो, अभी सब मालूम हुई जाती हैं।' आचार्य बोले।

'यह तुम्हारे चेहरे की क्या दशा हो रही है ?' वीरेश ने आचार्य के मुँह की ओर देखते हुए पूछा।

'यह भी मालूम हो जायेगा।' आचार्य हँसे, 'पहले इन लोगों का तुमसे परिचय तो करा दूँ।'

परिचय हो जाने के उपरान्त आचार्य ने सारी बातें एक-एक करके सुनाईं। बातें करते-करते सन्ध्या हो गई। लोग सुनने में इतने तल्लीन थे कि किसी को खाने तक की याद नहीं रही। अचानक जब भाभीजी को याद आई तो बोलीं, 'खाना-पीना भी होगा या केवल बातें-ही-बातें होंगी। अब सब लोग उठो।'

सब लोग उठे। भोजन करने के बाद सभी ने अपने-अपने बरतन भी धोये। भोजन समाप्त होने पर जब तक कोई उठे-उठे आचार्य बचे हुए शेष जूठे बरतनों को साफ करने पर जुट गये।

'यह क्या कर रहे हैं आचार्य ?' लोगों ने विरोध किया और अपनी-अपनी ओर बरतनों को खींचने लगे।

'यह सब-कुछ नहीं। सब लोगों की बारी तो होती ही है, कभी मेरी भी तो होनी चाहिए ?'

'परन्तु आप यहाँ रहते कब हैं ? नहीं यह भी होता।' अशोक बोला।

'अच्छा रुकिए। अभी इसका फैसला किये देता हूँ। आज बारी किस की है ?'

'मेरी।' सूरजकला बोली।

'ठीक। अब आप सब लोग जाकर बैठें। मैं और सूरजकला आपस में निबट लेंगे।'

सब लोग विवश हो गये। सूरजकला के बहुत कहने पर भी आचार्य

वहाँ से नहीं उठे। लाचार सूरजकला को आज की बारी आचार्य को देनी पड़ी।

सारे कार्यों से छुट्टी पाकर फिर गोष्ठी बैठी। सर्वसम्मति से उसी समय यह निर्णय हो गया कि रात को अब भोजन नहीं पकेगा। अतः सब लोग और भी निश्चिन्त हो गये। रात के बारह बजे तक आचार्य बातें करते रहे। अन्त में उन्होंने इस विषय पर भी प्रकाश डाला कि भविष्य में किस कार्यप्रणाली को अधिक महत्व देते हुए आगे बढ़ना उचित होगा। उन्होंने समाज की जागृति पर अधिक जोर दिया।

थोड़ी देर रुककर आचार्य ने दूसरे लोगों से पूछा, 'अब कोई विशेष समस्या रह तो नहीं गई ?'

'अभी एक बात तुमसे पूछनी है।' उदय बोला।

'पूछो।'

'शायद तुमको विदित न हो, वीरेश का विवाह रघुनाथराव की लड़की से होने जा रहा है और कल मँगनी भी हो गई।'

'मुझे मालूम है उदय।'

'तुम्हें मालूम है !' उदय को बड़ा आश्चर्य हुआ 'और जानते हुए भी तुमने रोका नहीं। जिस मनुष्य के साथ हमारी इतनी दुश्मनी है, जो दिन-रात हमारी पार्टी के पीछे हाथ धोकर पड़ा हो, उसी की लड़की हमारी पार्टी के एक मुख्य कार्यकर्ता के साथ ब्याही जाये। क्या हमारे हित में यह अच्छा होगा ? यह तो एक बहुत ही असम्भव-सी चीज है। क्या तुम यह आशा कर सकते हो कि वीरेश की भावी पत्नी इनके कार्यों को न जान सकेगी ? अगर थोड़ी देर के लिए यह भी मान लें कि वह नहीं जान पायेगी, तो भी कभी ऐसा अवसर आ सकता है जब वीरेश को उसकी सहायता लेनी पड़े। ऐसे असमय पर उसे प्रत्येक बातें बतानी ही होंगी फिर....'

आचार्य बीच में बोले, 'पर तुमने यह कैसे अनुमान लगा लिया कि रघुनाथराव की लड़की भी वैसी ही होगी जैसा रघुनाथराव ?'

'किन्तु यह भी तो अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वह वैसी नहीं होगी जैसा उसका बाप।'

भाभोजी की ओर देखते हुए आचार्य बोले, 'तुम तो' 'नन्दा को जानती हो। उदय, वह वीरेश से आगे-आगे ही रहेगी। और यदि मान लो, वह ऐसी न भी हो तब भी हम कुछ नहीं कर सकते। हमें प्रत्येक दशा में उसे मिलाना ही था। उससे जितनी अधिक हानि पहुँच सकती है उतना लाभ भी। इसे तुम क्यों भूले जाते हो?'

'उदय का भी कहना ठीक है आचार्य,' अब वीरेश बोला, 'इनको उसके विषय में क्या ज्ञान? खैर, अभी तो तीन वर्ष तक इसका प्रश्न ही नहीं उठता। आगे की आगे देखी जायेगी।'

'क्यों?' अंजना ने पूछा।

'सम्भवतः एम० ए० और लॉ करने के बाद वह विवाह करे।'

भाभीजी बोलीं, 'अब सब लोग उठो। सवेरे तड़के जाना भी है।'

सब उठे। आचार्य और वीरेश दोनो ऊपर सोने चले गये।

'तुम्हारे साथ रहने में,' वीरेश पत्थर पर लेटता हुआ बोला, 'यह सुख है। जमीन हो या पत्थर, झाड़ी हो या झंखाड़, जहाँ हो, जैसे हो वैसे रहो। भोजन चाहे एक समय ही मिले, लेकिन उस पर तुर्रा यह कि काम न पिछड़ने पाये।'

'अभी इंग्लैंड से आये हो न! दून की उससे हाँको जो तुम्हारी असलियत न जानता हो, समझे?' दोनो मित्र हँसने लगे।

'एक बात तुमसे पूछना भूल गया था। कल रात बाँसुरी तुम बजा रहे थे?'

'और भी कोई ऐसी बाँसुरी बजानेवाला पैदा हुआ है? अजी, इसी बाँसुरी पर तो तुम्हारी उनसे जान-पहिचान हुई थी और तभी से मुझसे मुहब्बत भी करने लगी हैं।'

'क्यों नहीं? खुदा मियाँ ने आपकी सूरत ही ऐसी बनाई है कि देखते ही लोग आपसे मुहब्बत की आहें भरने लगते हैं।'

फिर दोनो हँसने लगे।

'तुम्हें इसका अनुमान न होगा वीरेश, कि आज कितने वर्षों बाद मैं हँस रहा हूँ। जब से तुम गये जीवन पूर्णतः संघर्ष में बीता। किन्तु अब हम दो हो गये हैं। आज से मेरे जीवन का नया रूप होगा। मेरी शक्ति अब दुगनी हो गई।'

कुछ देर दोनो मित्र चुप रहे।

'तुम्हारी और नन्दा की भेंट कैसे हुई आचार्य ?'

'लो, इसे मैंने बताया ही नहीं।' आचार्य ने आदि से अन्त तक एक-एक बात बता दी।

'तभी मुझसे कह रही थी—पागल होते हुए आदमी बड़े सिद्धान्त का है।'

'वैसे उसे कुछ-कुछ सन्देह है कि मैं वास्तव में पागल नहीं हूँ, परन्तु अभी वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकी है। रघुनाथराव ने अवश्य मेरे विषय में कुछ इधर-उधर की बातें उससे की थीं, फिर भी मुझे वह पागल ही समझती है। और उसका समझना ठीक भी है। तुमसे भी कहे देता हूँ, भूल से कहीं इस भंडे को फोड़ न देना। समझे ?'

बाद में दोनो सो गये।

सवेरे सब के जाने के पहले यह तय हुआ कि वीरेश आज सन्ध्या को या कल सवेरे की गाड़ी से इलाहाबाद चला जाये और शीघ्र ही वहाँ से लौटने का प्रयत्न करे। अधिक-से-अधिक उसे एक मास का समय दिया जाता है। इसके भीतर यहाँ वह एक बार फिर आयेगा और तब सोच-समझकर जो क्षेत्र उसे देने का निश्चय होगा दे दिया जायेगा।

इसके बाद वीरेश उदय के साथ चला गया।

१५

वीरेश एक महीने के अन्दर न आ सका। क्यों न आ सका, इसकी सूचना उसने भेज दी थी। और वह ठीक भी थी। अचानक एक शाम को वह आ गया। स्टेशन से बाहर निकलते ही उसने निश्चय कर लिया कि उसे जाना कहाँ है। ताँगे पर बैठते हुए उसने नवाबगंज चलने के लिए कहा।

नन्दा बाहर सहन में टहल रही थी। वीरेश को देखते ही जैसे उछल पड़ी, 'आप!'

'जी!'

नौकर ने सामान उतारकर रखा।

कुर्सी पर बैठती हुई नन्दा बोली, 'इतनी जल्दी कैसे चले आये?'

'क्या करता। तबीयत जो वहाँ नहीं लग रही थी।'

'कब से?' नन्दा ने व्यंग्य किया।

'जब से इस मकान को देखा है।'

नन्दा हँस पड़ी, 'कपड़े उतारिए। बातों में आपसे जीतना कठिन है।'

'माताजी कहाँ हैं?' वीरेश कपड़े उतारने लगा।

'श्रद्धानन्द पार्क में जगत् गुरु का व्याख्यान हो रहा है न। वहीं सुनने गई हैं। अब तो वह दुनिया से जैसे अलग होती जा रही हैं।'

'लगन में ऐसा ही आकर्षण है।' वीरेश नन्दा के सोफे पर बैठता हुआ बोला, 'देखिए, एक देशभक्त कितनी यातनाएँ सहता है। कभी उसके नाखूनों में सूजे धँसाये जाते हैं तो कभी उसके बाल जला दिये जाते हैं। कभी हंटरों की मार सहता है तो कभी जलती हुई लाल-लाल सलाखों से उसके चमड़े उधेड़े जाते हैं। फिर भी उस काम को छोड़ता नहीं। क्यों नहीं छोड़ता? उसकी लगन है।'

'आपकी भी कोई लगन है या केवल....'

'क्यों नहीं। मेरी लगन तो मेरे सामने है।'

'चलिए....।' नन्दा उठ ही रही थी कि वीरेश ने पकड़कर अपने अंक में आबद्ध कर लिया। क्षण-भर के लिए नन्दा भी खो गई, किन्तु अचानक अपने को छुड़ाती हुई बोली, 'वीरेश बाबू, मैं इसे....'

'क्यों?' वीरेश को बुरा लगा।

'फिर विवाह का भी कोई महत्व रह जायेगा?'

वीरेश चुप हो गया।

नौकर चाय लेकर आया, किन्तु वीरेश ने चाय पीने से नाही कर दी। नौकर चाय लेकर चला गया। नन्दा समझ गई, लेकिन वह बोली नहीं। वहीं बैठी रही। बैठे-बैठे दस बज गये। महाराज ने आकर पूछा, 'रानी बिटिया, भोजन लगाऊँ?'

'लगाओ। माताजी शायद देर में आयेंगी।'

महाराज चला गया।

थोड़ी देर रुककर नन्दा बोली, 'आइए, चलिए।'

दोनो खाने पर बैठे। थोड़ा खाकर वीरेश ने हाथ रोक लिया!

'क्यों? खा चुके आप?' नन्दा ने पूछा।

'हाँ। आज भूख नहीं है।'

'उठिए।' नन्दा उठ खड़ी हुई।

'आप तो खाइए।'

'मुझे भी आज भूख कम थी।'

वीरेश कमरे में आकर लेट रहा। नन्दा भी सिरहाने कुर्सी खींचकर बैठ गई। दोनो मौन थे। वीरेश ने दूसरी ओर करवट बदल ली।

नन्दा ने वीरेश को अपनी ओर फेरते हुए पूछा, 'नाराज हैं न आप?' उसकी आँखें सजल हो आयी थीं।

'नाराज होने की क्या बात है?' वीरेश के बोलने में कड़वाहट थी।

'वीरेश बाबू, मेरे पास भी हृदय है, उमंगें हैं, इच्छाएँ हैं। किन्तु मैं सोचती हूँ कि उस आनेवाले नये जीवन को नयी लालसाओं के साथ

आरम्भ किया जाये जब संसार की सारी वस्तुएँ हमारे लिए नयी और रंगीन होंगी और हम उसका सुख लूटने के लिए स्वतंत्र होंगे। वीरेश बाबू, उन स्वप्नों को अभी से नष्ट न कीजिए। अभी उस....।' नन्दा की आँखों से आँसू गिरने लगे थे।

वीरेश का क्रोध उड़ गया। नन्दा के आँसू आँचल से पोंछता हुआ बोला, 'मुझसे गलती हुई नन्दा। भविष्य में फिर ऐसी गलती न पाओगी।'

नन्दा वीरेश से चिपट गई।

'चलो,' वीरेश ने कहा, 'माताजी को ले आयें। काफी देर हो चुकी है।'

ताँगा करके दोनो चल पड़े। भूख तो लगी ही थी। रास्ते में एक मिठाईवाले की दूकान देखकर उतर पड़े और दोनो ने खूब मिठाइयाँ खायीं। ताँगा जब चला तो नन्दा ने चुटकी ली, 'आज भूख नहीं है। हम नहीं खायेंगे।'

वीरेश भी गला दबाकर औरतों की आवाज में बोला, 'आज मुझे भी भूख कम लगी थी।'

दोनो हँस पड़े।

ताँगा जब पहुँचा तो सभा समाप्त होने पर थी। माताजी को देखते ही वीरेश ने बढ़कर पैर छुए।

'खुश रहो। फलो-फूलो।' मा ने आशीर्वाद दिया, 'कब आये बेटे?'

'अभी-अभी शाम को। मेरे मित्र की तबीयत खराब हो गई है। उन्हीं को देखने चला आया था।' वीरेश ने बहाना किया।

सब लोग आकर कार में बैठ गये।

*

दूसरे दिन सवेरे नन्दा को उसके कालेज पर उतारते हुए वीरेश ने कहा, 'गाड़ी मैं लिये जा रहा हूँ। शाम तक लौटूँगा।'

'जरा जल्दी आइएगा। आपको मित्रों से ही छुट्टी नहीं मिलती।'

'क्या करूँ। जब अपनी चीज अपने बस में न हो तो दूसरों का मकान ताकना ही पड़ता है।'

'अच्छा जाइए, जाइए! इंग्लैंड में इसके अतिरिक्त और कुछ भी सीखा है?'

वीरेश हँसता हुआ गाड़ी लेकर चल दिया।

जंगल में कुछ दूर तक तो वीरेश मोड़ता, चढ़ाता, उतारता अपनी मोटर को ले गया, परन्तु आगे जाना असम्भव देखकर मोटर एक ओर खड़ी करके उतर पड़ा और पैदल चलने लगा।

मधुकर से हाथ मिलाते हुए वीरेश ने पूछा, 'मुझे वहाँ ध्यान ही न रहा। अब आचार्य से भेंट कैसे होगी?'

'आचार्य आ चुके हैं। ऊपर जाइए।' मधुकर मुस्कराया।

ऊपर कोई था नहीं। केवल आचार्य बैठे कुछ लिख रहे थे।

'अरे यार, कुछ आराम भी कर लिया करो।' वीरेश जूते उतारता हुआ बोला, 'जब देखो काम में जुटे ही रहते हो। अभी लोगों को तुम्हारी आवश्यकता है।'

'आओ बैठो।' आचार्य हँसे।

दोनो मित्रों में बहुत समय तक बातें होती रहीं, तदुपरान्त उन लोगों ने नीचे उतरकर मधुकर को कुछ बतलाया और चल दिये।

१६

फतेहपुर के समीप, ग्रांड ट्रंक रोड के किनारे गुरुपुर नामक एक बहुत बड़ा गाँव है। इस गाँव में सात पट्टियाँ हैं। अलग-अलग पट्टियों में विभिन्न जाति के लोग बसे हुए हैं। लेकिन गाँव में अधिकतर आबादी ठाकुरों की है और इन्हीं की जमींदारी भी। अहीरों की पट्टी एक ओर

सड़क के किनारे है। उसके बाद सुनार, कायस्थ, ब्राह्मण फिर ठाकुर इत्यादि। अहीरों की पट्टी में एक मकान के सामने बोर्ड पर लिखा हुआ है—'समाज सुधारक पार्टी, गुरुपुर।'

वीरेश, उदय और आठ अन्य कार्यकर्ता इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए नियुक्त हुए हैं। काम प्रारम्भ हो गया है। प्रत्येक कार्य सब की राय से किया जाता है। आपस में लोगों का समान व्यवहार है। दो-दो की टोली बनी हुई है, जो अलग-अलग दूर देहातों में जाती है। वीरेश बारी-बारी से प्रत्येक टोली के साथ जाया करता है। उदय सदैव गुरुपुर में रहता है। उसका काम है सन्ध्या को सब लोगों के इकट्ठा होने पर दैनिक पत्रों का समाचार पढ़कर सुनाना और यदि कोई बाहरी सूचना हो तो उस पर विचार करना तथा उसी के अनुसार कार्य करने का निर्णय करना। गुरुपुर का क्षेत्र भी उसी के सुपुर्द है।

रचनात्मक कार्य बड़े सुन्दर रूप से चल रहा है। गाँववाले इनके व्यवहार और कामों से प्रसन्न हैं। कभी-कभी चन्दा भी इकट्ठा कर लिया जाता है। वीरेश ने अपने पैसों से एक मोटर-साइकिल भी ले ली है।

जाड़े की अँधेरी रात साक्षात् काली की भाँति रूप धारण किये साँय-साँय कर रही थी। ठंड की ठिठुरन से पेड़ तक काँप रहे थे। रात के बारह-एक बजे का समय होगा। गुरुपुर से एक मोटर-साइकिल सन-से निकलती हुई कानपुर की ओर बढ़ गई। चालक बड़ी तेजी से साइकिल लिये जा रहा था। कुछ दूर आगे जाने पर पीछे बैठा हुआ व्यक्ति बोला, 'और स्पीड (रफ़्तार) बढ़ाओ प्रेम। शायद पुलिसवाले हम लोगों का पीछा कर रहे हैं। किसी गाड़ी की भन्नाहट आ रही है।'

चालक ने और गति बढ़ा दी। मोटर-साइकिल अस्सी-पच्चासी की रफ्तार से जाने लगी।

थोड़ी देर में वह फिर बोला, 'कैण्टूमेण्ट से ही मोड़ लेना।'

कुछ और आगे जाने पर प्रेम चिन्तित स्वर में बोला, 'सम्भवतः पेट्रोल समाप्त होने लगा है।'

'खैर, जहाँ तक चले वहाँ तक खींच ले चलो ।'

मोटर-साइकिल मेमोरियल गार्डन के सामने आकर बन्द हो गई ।

'अब क्या होगा ?'

'चिन्ता आपकी है और विशेषकर आपके हाथ की । अन्य प्रबन्ध मैं कर लूँगा ।' प्रेम बोला ।

वीरेश सोचकर बोला, 'मैं नवाबगंज जा रहा हूँ । तुम कल सवेरे गुरुपुर चले जाना और जो समाचार हो मधुकर के पास....'

'हाँ । सब हो जायेगा । अब आप जाइए ।'

*

बँगले के अन्दर घुसते ही चौकीदार ने तड़पकर पूछा, 'कौन ?'

'मैं हूँ, वीरेश ।'

चौकीदार सिटपिटा गया, 'पहचान नहीं पाया था मालिक ।'

'अन्दर जगाओ ।'

'आप ! इतनी रात को !!' नन्दा ने आश्चर्य से पूछा ।

'अन्दर चलो । माताजी कहाँ हैं ?'

'लखनऊ गई हैं । आर्य समाज का वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा है । कल सवेरे या सन्ध्या तक आ जायेंगी ।'

'गाड़ी भी लेकर गई होंगी ?'

'नहीं । गाड़ी यहीं है । लखनऊ से मामाजी अपनी गाड़ी लेकर आये थे । उन्हीं के साथ चली गईं ।'

'तुम्हारी गाड़ी में पेट्रोल....'

'परन्तु बात क्या है ? आप बड़े घबड़ाये-से मालूम दे रहे हैं ।'

'मैं तुमसे पूछता हूँ, गाड़ी में पेट्रोल है या नहीं ?' वीरेश की आवाज में कुछ तेजी थी ।

'बहुत है, दो-चार गैलन ऊपर भी होगा । लेकिन बात भी तो सुनूँ ।'

बायें हाथ की ओर संकेत करता हुआ वीरेश धीरे से बोला, 'इसमें गोली लग गई है नन्दा ।'

'गोली !' नन्दा चौंक पड़ी, 'पर लगी कैसे ?'

'यह बाद में सुनना । अभी शीघ्र यहाँ से चली चलो । दूर चलना है । ड्राइवर को साथ न लेना ।'

वीरेश बाहर निकलता हुआ चौकीदार से बोला, 'कल सवेरे यदि माताजी आ जायें तो इनके लिए कह देना कि मेरे साथ एक मित्र के विवाह में गई हैं । दोपहर तक आ जायेंगी । समझे ?'

'जी हाँ ।'

मोटर फाटक के बाहर हो गई ।

सामने क्षितिज पर चाँदनी फैलने लगी थी । वीरेश बीच-बीच में रास्ता बताकर चुप हो जाता था । पीड़ा अब बढ़ती जा रही थी, परन्तु वहाँ हो ही क्या सकता था ! विवशता थी । नन्दा भी विचारों में उलझी हुई कार लिये चली जा रही थी । उसे यह तक पूछने की भी सुधि न रही कि वीरेश के हाथ में पीड़ा कैसी है । अचानक उसके विचारों की कड़ियाँ टूटीं । वीरेश बोला, 'अब तो पीड़ा सही नहीं जाती नन्दा । मालूम होता है जैसे हाथ फटा जा रहा है ।'

'आपने उसे बाँधा भी तो नहीं । हाथ को गरदन के सहारे बाँधिए तो कुछ आराम मिले ।' नन्दा ने वीरेश की ओर देखा ।

'बाधूँ कैसे ? कोई कपड़ा....'

'मेरे दुपट्टे से ।'

वीरेश ने नन्दा के वक्षस्थल से दुपट्टा लेकर अपने हाथ को गले के सहारे लपेटा ।

इतनी देर बाद नन्दा ने अब पूछा, 'आखिर आप जा कहाँ रहे हैं ?'

'अब तो चल ही रही हो । सब मालूम हो जायेगा । सुनकर क्या करोगी ?'

नन्दा चुप हो गई । मोटर अब महोबा के बीच से जा रही थी ।

'यह कौन-सा शहर है ?'

'महोबा ।'

'अभी और आगे चलना है ?'

'हाँ, कुछ दूर और ।'

गाड़ी महोबा को पार करती हुई निकल गई ।

'देखो,' वीरेश ने बताया, 'आगे जो सड़क पर छोटी-सी पुलिया दिखाई पड़ रही है उसी के बायीं ओर नीचे गाड़ी उतार देना । सँभाल-कर उतारते हुए चलना ।'

'क्या जंगल में ?' नन्दा ने डरते हुए पूछा ।

'हूँ ।'

जंगल में कुछ दूर और अन्दर जाने पर वीरेश बोला, 'गाड़ी रोक दो । तुमसे और अन्दर न जा सकेगी ।'

दोनो उतर पड़े ।

आगे-आगे वीरेश और पीछे-पीछे नन्दा । नन्दा के मस्तिष्क में उलझन थी और वीरेश पीड़ा से व्यथित । झोपड़ी के द्वार पर थपथपाते हुए वीरेश ने पुकारा, 'मधुकर ! मधुकर !!'

'कौन ?' मधुकर ने खाँसते हुए पूछा ।

'मैं, वीरेश ।'

वीरेश अन्दर घुसते ही मधुकर के तख्त पर गिर पड़ा । पसीने से वह भीग रहा था । नन्दा रूमाल से पंखा झलती हुई मधुकर के पूछने के पहले ही बोली, 'इनके हाथ में गोली लग गई है ।'

'घबड़ाने की बात नहीं,' मधुकर ने पीछे की टटिया हटाते हुए कहा, 'अभी सब ठीक हुआ जाता है ।' वह ऊपर चला गया ।

नन्दा बड़े अचम्भे में थी ।

थोड़ी देर बाद बड़े-बड़े बालवाले व्यक्ति को अन्दर घुसते हुए देखकर नन्दा पहले तो डर-सी गई, पर ज्योंही उसकी सूरत दिखलाई दी वह आश्चर्य से बोल उठी, 'बाँसुरीवाला !'

आचार्य ने नन्दा की ओर देखा, फिर वीरेश की ओर देखते हुए पूछा, 'वीरेश !'

'बड़ी पीड़ा है आचार्य ।' वीरेश कराह रहा था।

'चलो, अभी सब ठीक हुआ जाता है ।'

'लेकिन मैं इधर से कैसे चल सकूँगा ?'

'इधर से नहीं, उधर से। मैंने जाल गिरवाया है। उसमें बैठकर आराम से चले चलोगे ।'

वीरेश और नन्दा को जाल में बैठाकर आचार्य ने जोर से रस्से को हिलाया। जाल ऊपर उठने लगा। आचार्य ने इधर आकर झोपड़ी की टटिया बन्द की और ऊपर पहुँचे।

चीर-फाड़ का सामान पहले से तैयार था। आचार्य ने चट से ओवरकोट को काटकर अलग किया और काम पर जुट पड़े। इतवार का दिन होने के कारण सब लोग थे ही, काम झटपट होता गया। नन्दा यह सब देखकर दंग हो रही थी। वहाँ कई लड़कियों को देखकर उसे आश्चर्य तो हो ही रहा था, विशेष आश्चर्य उसे भाभीजी को देखकर हुआ। उसे अपने पिताजी की सारी बातें स्मरण हो आयीं। उन्होंने जो कुछ कहा था, सत्य ही कहा था। वह बैठी चिन्ताओं में डूबने-उतराने लगी।

पट्टी बँध जाने पर वीरेश को नींद आने लगी और वह सो गया। आचार्य ने पूछा, 'गोली लगी कैसे ? कुछ आपको इस विषय में ज्ञात है ?'

'मुझसे कुछ नहीं बतलाया। पूछने पर कहने लगे, चलकर बताऊँगा। उनका मतलब यहीं से होगा ।'

'आपको कल जाना भी होगा ?'

'जी हाँ ! दोपहर तक पहुँच जाना चाहिए। माताजी लखनऊ से दोपहर या सन्ध्या तक अवश्य आ जायेंगी ।'

'आपकी गाड़ी....'

'जंगल में किसी स्थान पर उन्होंने खड़ी करवा दी है। वह स्थान किधर है, कहाँ है, मैं अब ठीक नहीं बता सकती ।'

'ठीक है। चिन्ता न कीजिए ।'

'मेरे विचार से,' भाभीजी बोलीं, 'तुम यहाँ से आठ बजे जाओ।

उस समय तक वीरेश भी जग जायेगा। जाने के पहले भेंट हो जायेगी। जाओ, अब थोड़ा आराम कर लो।' उन्होंने संकेत से स्थान बताया।

१७

आचार्य वीरेश के पास बैठे हुए नाना प्रकार की बातें सोच रहे थे। उन्हें वीरेश के गोली लगने की उतनी चिन्ता नहीं थी जितनी नन्दा के यहाँ आने की। यद्यपि वह नन्दा के स्वभाव से बहुत-कुछ परिचित हो चुके थे। उन्हें यह भी मालूम था कि नन्दा और उसके पिता के विचारों में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है, फिर भी पूर्ण रूप से यह विश्वास कर लेना कि नन्दा अब उन लोगों के कथनानुमार ही कार्य करेगी, बड़ा कठिन जान पड़ रहा था। जिस लड़की के पिता ने उनकी पार्टी को इतनी क्षति पहुँचाई हो, जिस झिगड़ीवाला के पीछे उनके दल का एक-एक सदस्य हाथ धोकर पड़ा हो, भला ऐसी परिस्थिति में उसकी लड़की को अपनी ओर मिलाकर क्या रखा जा सकेगा ? खून की तासीर को क्या कभी मिटाया जा सकता है ? अवसर पड़ने पर वह अपनी ओर खींचेगा ही। आचार्य जितना अधिक इस विषय पर सोचते, उलझन उतनी ही बढ़ती जा रही थी। क्या हो, क्या न हो—एक अजीब समस्या उनके सामने अचानक आ खड़ी हुई थी।

इतने में नन्दा सकपकाकर उठ बैठी। सम्भवतः वह कोई स्वप्न देख रही थी।

'आप भी हाथ-मुँह धाकर तैयार हो जायें।' यह कहकर आचार्य ने ऊपर जाने का संकेत किया।

नन्दा ऊपर चली गई। जब ऊपर से लौटी तो वीरेश जग चुका था। नन्दा को देखकर उठ बैठा।

'तुम अभी गई नहीं ?' उसने पूछा।

'अब जाने की तैयारी कर रही हूँ। आपकी तबीयत कैसी है ?' उसके पास बैठती हुई नन्दा ने पूछा।

'आचार्य का हाथ लगे और ठीक न हो। ये आल राउंडर हैं नन्दा। इस थोड़े-से जीवन में इन्होंने क्या-क्या नहीं सीखा और क्या-क्या नहीं किया। तुम इन्हें जानती तो होगी ?'

'जानती तो इन्हें बहुत दिनों से हूँ, किन्तु आज विशेष रूप से जाना है।' नन्दा ने आचार्य की ओर देखा। वह सिर नीचा किये सुन रहे थे।

आचार्य ने बात के क्रम को बदलते हुए पूछा, 'तुमने गोली लगने का कारण नहीं बतलाया वीरेश ! बात क्या हुई ? मैं रात-भर इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा।'

वीरेश कहने लगा, 'उस दिन हम सब खाना खाकर बैठे अभी गपशप कर ही रहे थे कि गाँव में बड़े जोरों का हल्ला हुआ। सब दौड़ पड़े। केवल उदय वहीं रह गया। पता नहीं, क्या सोचकर मैंने चलते समय अपनी रिवाल्वर भी ले ली। रास्ते में बताया गया कि सरपंच के घर पर डाकू चढ़ आये हैं। मुखिया का नाम सुनकर एक बार मेरे मन में विचार उठा कि लौट चलें, क्योंकि उस दिन के पहले यही सरपंच पुलिसवालों से मिलकर दूसरों के घरों में चोरी और डाके डलवाया करता था और जो कुछ आता उसमें हिस्सा बँटाता था। परन्तु फिर भी मैंने सोचा कि मनुष्यता के नाते ऐसे गाढ़े समय उसकी सहायता करनी ही चाहिए।

'मैंने वहाँ पहुँचते ही एक-दो गोली हवा में दागी। धाँय-धाँय का शब्द सुनते ही बाहर जो दो व्यक्ति बन्दूक लिये खड़े थे भाग चले। ईर्ष्या और भय के कारण वहाँ गाँव का कोई भी व्यक्ति नहीं था। खैर, मैं धड़-धड़ाता हुआ अन्दर घुस गया। जाते ही एक हाथ से बन्दूक छीनकर दूसरी ओर फेंक दी और फौरन ही सब को एक स्थान पर एकत्रित होने के लिए कहा। बात जमनी थी सो जम गई। इतने में बाहर सुनाई पड़ा—दरोगाजी आ गये, दरोगाजी आ गये। मैं जेब में रिवाल्वर रखता

हुआ मुड़ा ही था कि दारोगाजी ने घुसते ही मेरे ऊपर गोली चला दी। निशाना उनका चूक गया। गोली मेरे हाथ में लगी। मैं परिस्थिति की गहराई को तत्काल भाँप गया और झट से पिस्तौल निकालते हुए मैंने गोली चला दी। मेरा निशाना ठीक बैठा। दारोगाजी पृथ्वी पर लोटने लगे। डाका डालनेवाले उनके सामने ही निकल चुके थे। मैं भी धीरे से निकला। बाहर प्रेम को ढूँढ़कर उसे साथ लिया और उदय को थोड़े में समझाकर भाग चला।'

'तुम मोटर-साइकिल से आये होगे?'

'हाँ। लेकिन समय की बात तो देखो। वह भी मेमोरियल गार्डन के समीप पहुँचकर रुक गई। पेट्रोल खत्म हो गया।'

'तब तुम नवाबगंज चले गये? अच्छा किया।'

'डाका क्या पुलिसवालों ने डलवाया था?' नन्दा ने पूछा।

'हाँ, मालूम तो ऐसा ही पड़ता था।'

'लेकिन ऐसा क्यों?'

'इस बार उलटी बात हो गई, नहीं पहलेवाले दारोगाजी इसी जमींदार से मिलकर देहातों में डाके डलवाया करते और जो कुछ मिलता आधा साझा कर लते थे!'

'तो उन दारोगाजी का तबादला हो गया?'

'हाँ। खैर, थोड़े दिनों में इन दोनो की भी बनने लगेगी। अभी लेन-देन का मामला तय नहीं हुआ है। जहाँ तय हुआ कि फिर वही पुराना ढर्रा शुरू हो जायेगा। अँग्रेजों की नीति बड़ी विचित्र है नन्दा। अगर इतने धूर्त न होते तो सम्भवतः इस देश में उनकी हुकूमत स्थापित न हुई होती, परन्तु सौभाग्यवश अब हमारे देशवासी भी इनकी धूर्तता को समझने लगे हैं। ईश्वर चाहेगा तो बहुत जल्द हमारा देश स्वतंत्र होगा।' वह रुककर बोला, 'अब तो तुम आ न सकोगी?'

'मेरी छह-माही परीक्षा होनेवाली है। रात-भर का बहाना तो मैं निकाल लूँगी, परन्तु प्रश्न आने-जाने का है। यह कैसे हल होगा?'

'इसका प्रबन्ध यदि यह चाहें तो हो सकता है।' वीरेश ने आचार्य की ओर देखते हुए कहा।

आचार्य कुछ सोचते रहे, फिर नन्दा की ओर देखते हुए बोले, 'कल तो आप आ न सकेंगी। परसों या नरसों आपका आना होगा। मैं परसों आपसे स्कूल के पास मिलकर जैसा होगा बता दूँगा।'

अशोक को नन्दा के साथ पहुँचाने के लिए भेजा गया।

मोटर अशोक चला रहा था। नन्दा बगल में बैठी कुछ सोच रही थी। सोचते-सोचते उसने पूछा, 'आचार्य ! आपके इस....'

'जी हाँ। वही इस पार्टी के सर्वेसर्वा हैं। बड़ी लगन है। देखिए ईश्वर उनका कहाँ तक साथ देता है।'

नन्दा मौन फिर सोचने लगी। उसे ऐसा भास हो रहा था जैसे कोई उसके हृदय को कुरेद रहा हो। उसने बहुत-से लोगों को देखा है। उनके विषय में सोचा है और भूल भी गई है, लेकिन कभी भी उसके हृदय में हलचल नहीं उठी, परन्तु आज आचार्य ने उसके हृदय में तूफान उठा दिया है। वह बार-बार सोचती, अपने को धिक्कारती, किन्तु लौटकर फिर वहीं आ जाती। उसके मस्तिष्क ने तर्कना की—'यह रास्ता बीहड़ और प्राणघातक है। इस पर मैं कैसे चल सकूँगी। मेरे जीवन का लक्ष्य तो कुछ और है। मनसूबे कुछ और हैं। मेरी दुनिया कुछ और ही होगी। उसका बसानेवाला और है।' परन्तु तत्काल स्मरण हो आया, 'मेरी दुनिया बसानेवाला भी तो आचार्य का ही अनुयायी है।' वह फिर आचार्य के साथ उलझ गई। उसको ऐसा जाने पड़ने लगा जैसे आचार्य के बिना उसका जीवन ही निरर्थक हो जायेगा। उसको आचार्य के पास जाना ही पड़ेगा। उनके बिना उसका जीवन नीरस है। फिर प्रश्न उठा—'तो क्या वीरेश बाबू को धोखा देना पड़ेगा ?'

उत्तर मिला—'नहीं। मैं ऐसा नहीं कर सकती। मैं उन्हें धोखा नहीं दे सकती।'

'किन्तु अब तुम आचार्य को भी नहीं छोड़ सकती।'

उसका माथा चकरा उठा ! अनायास ही उसके मुँह से निकल गया —'मैं जहर खा लूँगी, जहर !'

'क्या हुआ नन्दा देवी ?' अशोक ने घबड़ाकर उसकी ओर देखा।

'कुछ नहीं, अशोक बाबू।' नन्दा शर्मा गई।

नगर में प्रवेश करते ही। अशोक मोटर से उतर पड़ा।

१८

सन्ध्या के लगभग आठ बजे होंगे। बृजेन्द्रस्वरूप पार्क में एक मोटर-साइकिल घुसी। चालक कोई सरदार-सा दीख रहा था। सिर के ऊपर नोकदार साफा, दाढ़ी पर अच्छी-सी जाली और शरीर पर सुन्दर-सा सूट। मोटर-साइकिल के आगे एक छोटी-सी लाल बत्ती जल रही थी। मोटर-साइकिल कुछ दूर चलकर आगे दाहिने ओर मुड़ी ही थी कि किसी ने सड़क पर आकर हाथ दिखलाया। चालक ने साइकि रोक दी।

'क्षमा कीजिएगा। पहचानने में भूल हुई।' वह लौट पड़ी।

'क्यों ?' चालक ने हँसते हुए पूछा।

'आप ! पहचानना भी कठिन है। लाल बत्ती देखकर रोका था, परन्तु सरदारों-ऐसी सूरत....'

'क्या करता ? आपको साथ लेकर चलना था, फिर शहर के अन्दर से। दाढ़ी कटवाई नहीं जा सकती थी। सोचा सरदारोंवाली वेशभूषा ही उपयुक्त रहेगी।'

आचार्य को उपर से नीचे तक देखती हुई नन्दा बोली, 'मैं क्या, यदि ब्रह्माजी भी देखें तो एक बार पहचानने में भूल कर जायेंगे। चलिए चलें।' वह मुस्करा रही थी।

'तैयार हैं आप ?'

'बिलकुल ।'

मोटर-साइकिल जब शहर के बाहर निकल गई तो नन्दा बोली, 'ये कपड़े आपको कहाँ से मिल गये ?'

'सम्भवतः आपने कपड़ों को ध्यान से देखा नहीं, ये आज के नहीं हैं । जब मैं विश्वविद्यालय में पढ़ा करता था तब के हैं । केवल साफा और जाली उस दिन मोल ले ली गई थी । अवसर पड़ने पर कभी-कभी पहिन लेता हूँ । वैसे....'

नन्दा ने बीच में टोका, 'मैं एक प्रार्थना करना चाहूँगी । आप कृपया मुझे देवी कहकर सम्बोधित न किया करें और न आप । मुझे बुरा लगता है । केवल नन्दा ठीक है ।'

'क्यों ?'

'क्यों का कोई प्रश्न नहीं । चूँकि मुझे अच्छा नहीं लगता, इसलिए मैं सुनना नहीं चाहती । बस ।'

'अच्छी बात है ।' आचार्य कहकर चुप हो गये ।

थोड़ी देर तक दोनो मौन रहे । मोटर-साइकिल अपनी गति से चली जा रही थी । सामने नभमंडल पर चन्द्रदेव चमक रहे थे । मौसम में एक टीस थी और गुदगुदी भी । नन्दा ने बात आरम्भ की, 'वीरेश बाबू के घरवालों को यह तो विदित होगा नहीं कि वह आपकी संस्था में काम करते हैं ?'

'ऊहूँ ।'

'तब तो....'

'कोई चिन्ता की बात नहीं । वीरेश अपने पिता से बहाना करके आया था कि वह किसी व्यापार के सम्बन्ध में बम्बई जा रहा है और सम्भव है उसे अधिक समय तक रुकना पड़े । जैसा भी होगा वह सूचना देता रहेगा । उसके पिता सहमत हो गये थे ।'

'लेकिन बम्बई से वीरेश बाबू के द्वारा पत्रों का आदान-प्रदान तो होना ही चाहिए, जिससे घरवालों को सन्तोष रहे और बात खुलने न पाये ।'

'इसका प्रबन्ध है। बम्बई में भी अपने कार्यकर्ता काम कर रहे हैं।'

'तो ठीक है।' कहकर नन्दा चुप हो गई।

कुछ दूर और आगे जाने पर आचार्य ने गोल प्रश्न किया, 'अब क्या करने का विचार है नन्दा ?'

नन्दा को समझते देर न लगी, 'क्यों ? आपको मैं क्यों बताऊँ ? क्या अपनी बातें आप मुझे बता देते हैं ? जब आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं तो मुझे आप पर कैसे होने लगा ?' वह हँस रही थी, 'किन्तु एक बात है आचार्य, आपका सारा परिश्रम निष्फल हो गया।'

'वह कैसे ?' आचार्य ने समझते हुए भी पूछा।

'क्या इसे भी बताना होगा ? आपका स्मरण नहीं, मैंने कितनी बार आपसे आपके विषय में जानने का प्रयत्न किया था, किन्तु आप सदैव मुझे टालते ही रहे, जब कि आपको मेरे प्रति सहानुभूति और मेरी निष्कपटता पर विश्वास भी था। इसे मैं भली-भाँति जानती थी, लेकिन आज आपका कोई भी रहस्य मुझसे छिपा नहीं है और न अब आप छिपा ही सकते हैं।'

'लेकिन यहाँ किसी ने छिपाने का प्रयत्न भी किया हो ? हमारे यहाँ, हम लोगों के बीच में जो स्थान वीरेश को प्राप्त है वह तुम्हें भी। रही पहले की बात, जिसके लिए तुम्हें शिकायत है, उसे तुम स्वयं समझ सकती हो।' आचार्य ने कूटनीति का पल्ला पकड़ा।

नन्दा हँसी, 'जो बीत गया सो बीत गया। मुझे तो यही खुशी है कि आपने मुझे कुछ दिया तो। देखें, आगे क्या-क्या मिलता है। कल्पनाएँ तो बहुत कुछ कर रखी हैं।'

आचार्य चुप रहे। आगे दोनो में कोई बातचीत नहीं हुई।

१६

नन्दा अब हर दूसरे-तीसरे दिन आचार्य के साथ आने-जाने लगी थी। घर पर माताजी से यह बहाना निकालकर कि 'सहेलियों के यहाँ पढ़ने जा रही हूँ' वह सन्ध्या को निकल पड़ती और जैसा तय होता उसी के अनुसार निश्चित समय पर आचार्य के साथ चली जाती और दूसरे दिन दस-ग्यारह तक लौट आती।

यद्यपि वीरेश बहुत कुछ ठीक हो चला था, फिर भी नन्दा के आने-जाने में वही लगन थी। बहाना था तो वीरेश के लिए, परन्तु उसका अधिक समय आचार्य के साथ वार्तालाप में ही व्यतीत होता था। किसी-किसी दिन वीरेश सो भी जाता, पर नन्दा आचार्य से बातें करती-करती सवेरा कर देती। वीरेश के मन में दो-एक बार शंका भी उठी, परन्तु आचार्य का ध्यान आते ही वह अपने को धिक्कारने लगता। आचार्य के प्रति उसे जितना प्रेम था उतना ही विश्वास और श्रद्धा भी। वह भली-भाँति जानता था कि यदि नन्दा की ओर से कोई संकेत भी होगा तो भी आचार्य उससे सदा दूर हटने का प्रयत्न ही करेंगे। किन्तु नन्दा ऐसा करेगी क्यों? उसे नन्दा पर भी विश्वास था।

नन्दा जिस तेजी के साथ आचार्य की ओर बढ़ रही थी इससे न तो आचार्य ही अनभिज्ञ थे और न स्वयं नन्दा ही। दोनों की दशा एक-सी हो रही थी। अन्तर केवल इतना था कि नन्दा की गति में तीव्रता थी और आचार्य में रुकावट। आचार्य के सम्मुख बड़ी विचित्र समस्या उठ खड़ी हुई थी। वह समझ नहीं पा रहे थे कि करना क्या चाहिए? नन्दा की मँगनी के पहले आचार्य ने नन्दा के लिए अपने हृदय में जो सुन्दर-सी कुटिया बिना सोचे-समझे बना रखी थी उसे तूफान के आने पर भी न गिरता हुआ देखकर स्वयं अपने हाथों से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और शान्त हो चुप बैठ रहे। परन्तु उनकी यह शान्ति अधिक दिनों तक स्थित न रह सकी। अचानक एक रात नन्दा वीरेश के साथ आई।

दोनो ने फिर एक-दूसरे को नये रूपों में देखा। एक नवीन कथा की भूमिका का सृजन हुआ; लेकिन आश्चर्य तो यह था कि इस बार भूमिका की लेखिका स्वयं नन्दा थी। वह क्या करें ? उनकी समझ में नहीं आ रहा था। विवशता यह थी कि नन्दा का पलड़ा इतना भारी पड़ रहा था कि उसके विपरीत वीरेश के हलकेपन का अनुमान तक लगाना कठिन दीख रहा था। नन्दा के साथ तीन शक्तियाँ थीं—आचार्य के प्रति उसका आकर्षण, आचार्य का उसके प्रति पहले का झुकाव और इन दोनो से भी बढ़कर उसका पार्टी के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेना। इतनी बातें एक ओर और वीरेश अकेला एक ओर—केवल मित्रता का प्रगाढ़ प्रेम लिये हुए।

एक रात जब आचार्य नन्दा को लिये चले आ रहे थे तो नन्दा ने प्रश्न किया, 'क्या अब आपको मेरे ऊपर पूर्ण विश्वास है आचार्य ?'

'क्यों ? सन्देह भी तो नहीं किया जा सकता।'

'तब तो आपकी पार्टी की सदस्यता मुझे प्राप्त हो सकती है ?'

'बिलकुल प्राप्त हो सकती है। हमारे यहाँ सब लोगों की यही राय है कि तुम्हें शीघ्र-से-शीघ्र सदस्य बना लिया जाये।'

'तो वार्षिक परीक्षा समाप्त होते ही मैं आपके साथ काम करने लगूँगी ?'

'अवश्य। यह तो सबके लिए प्रसन्नता की बात होगी।' कहकर आचार्य चुप हो रहे।

जब नन्दा के साथ आचार्य ऊपर पहुँचे तो भाभीजी बैठी वीरेश से बातें कर रही थीं, किन्तु प्रतीक्षा आचार्य की ही थी।

आचार्य ने बैठते ही पूछा, 'तुम कब आईं ?'

'शाम को।'

'कोई विशेष घटना ?'

'कलकत्ते से पत्र आया है। कुछ सदस्यों के आपस में मनमुटाव होने के कारण पार्टी में दलबन्दी की आशंका है। इसे ठीक करने के लिए लोगों ने तुम्हें बुलाया है।' भाभीजी ने पत्र आचार्य के हाथों में दे दिया।

पत्र पढ़कर आचार्य बोले, 'अब होना क्या चाहिए ?'

'होना क्या चाहिए ? कल किसी गाड़ी से कलकत्ते चले जाओ। तुम्हारा वहाँ जाना अत्यन्त आवश्यक है ?'

'तो कल तूफान से चला जाऊँ।'

'अवश्य चले जाओ।'

२०

सन्ध्या को ठीक छह बजे कानपुर से तूफान छूटता है। आचार्य साढ़े पाँच पर स्टेशन पहुँच चुके थे। गाड़ी आ चुकी थी। संयोग से प्लेटफार्म पर आते ही सामने 'दूसरी श्रेणी' का डिब्बा खाली दिखलाई पड़ा। आचार्य ने कुली को उसमें सामान रखने का संकेत किया। डिब्बे में केवल तीन बर्थ थीं। दो नीचे और एक ऊपर। आचार्य ने नीचे-वाली बर्थ पर बिस्तर बिछाया और लेट गये। लेटते ही उनकी आँखें झपने लगीं और वह सो गये। गाड़ी जब झटके से फतेहपुर में आकर रुकी तो उनकी आँख खुली। वह हड़बड़ाकर उठ बैठे। उनके सामने-वाली बर्थ पर किसी का बिस्तर बिछा था, परन्तु बिस्तरवाला नहीं दिखाई पड़ रहा था।

इतने में एक स्थूल शरीरवाले सेठजी ने डिब्बे में प्रवेश किया। उनके घुसते ही आचार्य ने पूछा, 'कौन-सा स्टेशन है ?'

'फतेहपुर।' सेठजी ने दूसरी ओर देखते हुए उत्तर दिया, 'इधर लाओ, इधर। जल्दी-जल्दी।' सेठजी कुलियों से कह रहे थे।

सारा डिब्बा सामान से भर गया।

आचार्य ने मुस्कराते हुए चुटकी ली, 'सफर में सेठजी, पूरे सामान के साथ ही चलना चाहिए तभी सुख....।'

सेठजी बीच ही में बोल उठे, 'जी हाँ। क्या बताऊँ, जल्दी-जल्दी में गधों ने बहुत-सा सामान बाँधणा ही भूल गये। भगवान ही मालिक है। यह बिस्तर किसका है?' सेठजी अपने मतलब पर आये।

'मुझे मालूम नहीं। आपका तो है नहीं।'

'ऊँहूँ!'

'आप मेरे ऊपरवाली बर्थ पर बिस्तर बिछा लें। वहाँ आराम भी रहेगा।'

सेठजी बिना बोले बिस्तरबन्द उठाने लगे। आचार्य ने उनका हाथ बँटाया।

गाड़ी चलने से कुछ ही क्षण पहले एक महिला ने डिब्बे में प्रवेश किया। उसने सरसरी दृष्टि से दोनो महाशयों को देखा और फिर अपने बिछे हुए बिस्तर पर बैठकर कुछ पढ़ने लगी। आचार्य को जब सेठजी के कामों से छुट्टी मिली तो उन्होंने देखा कि सामने कोई युवती बैठी हुई पत्रिका पढ़ रही थी।

कुछ समय बाद फिर उस युवती ने आचार्य की ओर देखा। आचार्य बाहर बढ़ते हुए अन्धकार को देख रहे थे। युवती फिर पत्रिका पढ़ने लगी। गाड़ी हरहराती हुई अपनी गति से चली जा रही थी।

युवती का चित्त स्थिर नहीं था। उसने पूछा, 'आप कहाँ जायेंगे श्रीमान्?'

आचार्य ने चौंकते हुए कहा, 'नन्दा!'

'आचार्य! आप!!' नन्दा उछलकर आचार्य के गले से लिपट गई।

आचार्य ने नन्दा को अलग करते हुए ऊपर देखा। सेठजी खर्राटे भर रहे थे।

नन्दा ऊपर देखती हुई बोली, 'आप भी कमाल करते हैं। कानपुर स्टेशन पर ढूँढ़ती रही। फतेहपुर में सारी गाड़ी छान डाली, किन्तु आपका कहीं पता नहीं। पता हो कैसे? बार-बार अपनी सूरत जो बदल लिया करते हैं। इस समय तो आप बिलकुल साहब हो रहे हैं, साहब। कहाँ

वह बाँसुरीवाला, बड़े-बड़े बालोंवाला पागल और कहाँ यह क्लीन शेव्ड, टाई और सूट धारण किये विलायती साहब। भला मैं कैसे पहचान सकती थी ?' नन्दा इतनी प्रसन्न थी कि उसे इस बात का ध्यान तक नहीं रहा कि उसे क्या कहना चाहिए और क्या नहीं।

आचार्य ने गम्भीर होकर पूछा, 'तुम यहाँ कैसे ?'

'कलकत्ते जा रही हूँ।'

'किस लिए ?'

'आपके साथ और किस लिए,' नन्दा ने आचार्य की भाव-भंगिमा को ताड़ा, 'आप नाराज हो गये। अच्छी बात है। इलाहाबाद से लौट जाऊँगी।' उसने सिर नीचा कर लिया।

'देखो नन्दा, प्रत्येक कार्य को सोच-समझकर करना चाहिए। बिना किसी को सूचित किये इस प्रकार एकबारगी मेरे साथ कलकत्ते चल देना एक नयी समस्या को जन्म देना ही तो हुआ। माना और किसी को किसी बात का सन्देह न हो, परन्तु वीरेश क्या सोचेगा ? क्या यह सोचनेवाली बात नहीं है ? नन्दा, मैं तुम्हारे हृदय के भावों को समझता हूँ और सम्भवतः तुम भी मेरे हृदय से अनभिज्ञ न होगी। लेकिन वह अवसर अब निकल चुका है। अब तुम्हारा रास्ता कुछ और है, मेरा कुछ और। तुम्हें वीरेश के साथ ही चलना होगा नन्दा। वही तुम्हारा सब-कुछ है। इसी में हम सबका कल्याण है। विशेषकर हमारी पार्टी का।'

नन्दा चुप रही।

आचार्य कहते गये, 'मैंने जीवन में केवल तुम्हीं से प्रेम किया था और जब मैंने इस क्षेत्र में कुछ आगे बढ़ना चाहा तो मेरे सामने ऐसी दीवार खड़ी कर दी गई जिसकी नींव बालू पर होते हुए भी मैं तोड़ने में असमर्थ था। वीरेश मेरा मित्र है। वह भी आज का नहीं बाल्यकाल का। मित्रता के ऊपर कोई धब्बा न आये, इसका तो ध्यान अब रखना ही होगा।'

नन्दा अपने बिस्तर पर जाकर लेट गई।

आचार्य सोचने लगे। उनके सीने में भी हृदय है। उन्होंने समाज के हितार्थ अपने को, अपने जीवन को न्योछावर अवश्य किया है, किन्तु क्या वह अपने प्रेम के अधिकार को भी देश पर बलिदान कर दें ! ऐसा नहीं हो सकता। वह इस अधिकार को अपने हाथों से नहीं जाने देंगे। उन्होंने सोचकर देखा तो वैसा भी नहीं हो सकता था। तब ?....उनके मस्तिष्क में एक बात और आयी। यदि नन्दा किसी कारण से अपने प्रेम को ठोकर खाता हुआ देखकर बदला लेना चाहे, तो ? उस बदले का भीषण परिणाम क्या होगा ! परिणाम सोचकर आचार्य के नेत्रों के सामने अँधेरा छा गया। यद्यपि नन्दा इतनी क्षुद्र नहीं हो सकती, इसे आचार्य भलीभाँति जानते थे, फिर भी मानव कब और किस समय किन परिस्थितियों के दबाव में पड़कर किधर को मुड़ जाये कहा नहीं जा सकता। प्रेम महान होते हुए भी अन्धा है। यही उसका अवगुण है।

आचार्य सोचते-सोचते लेट गये। उन्हें करना क्या चाहिए यही उनकी समझ में नहीं आ रहा था। उधर मित्रता का कर्त्तव्य, इधर पार्टी का प्रश्न। दोनो में किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया जा सकता।

इलाहाबाद आ गया। गाड़ी रुकी। नन्दा उठी और बिस्तर लपेटने लगी। आचार्य ने दूसरी ओर देखते हुए कहा, 'नन्दा !'

'कहिए ?'

'बिस्तर मत लपेटो।'

'क्यों ?'

'मेरे साथ कलकत्ते चलना है।'

नन्दा खिड़की की ओर मुँह करके बैठ गई। आध घंटे बाद गाड़ी ने सीटी दी और धकधक करती हुई चल पड़ी। दोनो अपने-अपने स्थानों पर मौन बैठे सम्भवतः कुछ सोच रहे थे। डिब्बे में पूर्णतः सन्नाटा था। केवल सेठजी की नाक बोल रही थी। सेठजी घोड़े बेचकर सो रहे थे। आचार्य उठे और जाकर नन्दा के बिस्तर पर बैठ गये। नन्दा ने उनकी ओर देखा और फिर बाहर देखने लगी।

आचार्य ने नन्दा का हाथ पकड़ते हुए पूछा, 'नाराज हो गईं नन्दा ?'

'नहीं तो ।'

'नन्दा !' आचार्य के स्वर में करुणा थी ।

'कहिए ।'

'यदि तुम्हें यह विदित हो जाये कि तुम्हारे पिता ने मेरे भाई को गोली से मारा है तो क्या मेरे कर्त्तव्यों का तुम मूल्यांकन कर सकोगी ? तुम्हारे या तुम्हारे पिता के प्रति मेरा कैसा व्यवहार होना चाहिए इसे तुम बता सकोगी ?' आचार्य का यह बेतुका और नया प्रश्न था ।

नन्दा आचार्य की आँखों में आँखें डालती हुई बोली, 'मेरे और मेरे पिता के प्रति इस विषय में कर्त्तव्यों का निर्धारीकरण जितना आप स्वयं कर सकेंगे उतना मैं नहीं । समस्या तो आपके सामने है, मेरे सामने नहीं ।'

'ठीक है, लेकिन थोड़ी देर के लिए मान लो यही घटना तुम्हा....'

'किन्तु,' नन्दा ने फिर बड़े ध्यान से आचार्य की ओर देखा । जैसे वह कुछ भाँपना चाहती हो, 'बात क्या है ? आपके मस्तिष्क में यही प्रश्न क्यों उठा, और भी तो हो सकते थे । सम्भवतः यह प्रश्न उठाकर आप मुझसे अपना पीछा छुड़ाने के हेतु एक नयी भूमिका तैयार कर रहे हैं । क्यों ? किन्तु आचार्य, इसकी कोई आवश्यकता नह । मैं स्वयं आपके रास्ते से हट जाना चाहती हूँ । ईश्वर के लिए आपस में ईर्ष्या उत्पन्न करने के बहाने मेरे पिता को कलंकित न कीजिए । मैंने आपसे प्रेम किया है और इस प्रेम को सत्य बनाने में मैं पीछे नहीं हटूँगी । मेरी मँगनी वीरेश बाबू से अवश्य हुई है, पर मैंने उनसे प्रेम कभी नहीं किया और शायद अब कर भी नहीं सकूँगी । जिस प्रकार आप मुझसे प्रेम करने में विवश हैं, उसी प्रकार मैं भी अब उनसे प्रेम नहीं कर सकती । अन्तर केवल इतना है कि आपकी विवशता में भय है और मेरी में आत्मा का बन्धन ।'

नन्दा बोलती ही गई । जैसे आज वह सब-कुछ कह डालना चाहती

थी, 'सम्भवतः आप डरते हों कि कहीं मैं आपकी पार्टी को सारी बातें सरकार को सूचित न कर दूँ। यद्यपि इस प्रकार का सन्देह आपको करना नहीं चाहिए, फिर भी यदि ऐसी कोई शंका है तो उसे आप अपने मस्तिष्क से निकाल दें। मैं आपसे चाहे जितनी दूर रहूँ, जहाँ भी रहूँ, जिस दशा में भी रहूँ किन्तु आपकी पार्टी को मेरे द्वारा कोई क्षति नहीं पहुँच सकेगी। लेकिन एक चीज मैं और कहे देती हूँ। चाहे आप अभी अकड़पन में इसे अनुभव न करें, किन्तु यह निश्चय है कि आप....आप मेरे....। खैर, होगा। जाइए लेटिए। मैं मुगलसराय से लौट जाऊँगी। आप मुझे रोक-कर शायद अपने सन्देह को दूर करना चाहते थे।'

'नन्दा!' आचार्य ने उसे अचानक अपनी ओर खींच लिया, 'तुम ठीक कहती हो। मैं तुम्हारे बिना कुछ नहीं कर सकता। मैं अपने को सँभालने की बहुत चेष्टा करता हूँ, पर कर नहीं पाता। मेरे जीवन-भर की सारी कमाई तुम्हारे बिना नष्ट हो जाना चाहती है। मैं जिन कठिनाइयों और दुःखों को झेलता हुआ आगे बढ़ा था उसे ईश्वर ही जानता है। फिर भी मुझे इस कार्य में सदैव आनन्द ही मिलता रहा है। किन्तु अब न जाने क्यों इस कार्य से कुछ अरुचि होने लगी है। क्यों होने लगी है? इसका एकमात्र कारण केवल तुम कही जा सकती हो। शायद तुमसे अलग होकर मैं अपने कर्त्तव्यों को उतनी कार्यकुशलता से न कर सकूँगा, लेकिन ....लेकिन,' आचार्य को वीरेश की याद आ गई थी। वह घबड़ा उठे, 'वीरेश मेरे छुटपन का संगी है, नन्दा। हम लोगों ने साथ-साथ शिक्षा भी ग्रहण की है। उस समय मेरे भइया भी वहीं थे। मेरे भइया ने मुझे शिक्षित और योग्य बनाने में कितनी कठिनाइयों और दुःखों को झेला था और अन्त....।' आचार्य का गला रुँध आया और आँसू छलछला पड़े।

नन्दा कुतूहल से आचार्य को देखती हुई एक ओर हो गई। वह आचार्य को अपनी जाँघों पर लिटाकर सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, 'क्या हुआ?'

आचार्य शान्त लेटे हुए आँसू बहा रहे थे। उन्होंने आँसू पोंछते हुए उठने की चेष्टा की, किन्तु नन्दा ने दबाते हुए कहा, 'लेटे रहिए। मुझे कोई कष्ट नहीं है।'

आचार्य ने नन्दा की ओर देखा, 'मैं अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए वीरेश को धोखा नहीं दे सकता नन्दा। उसका मुझ पर विश्वास है, भरोसा है। मैं तुम्हारे वियोग को सह लूँगा, किन्तु उसे धोखा देकर शायद संसार में किसी को मुँह न दिखा सकूँ। तुम उसकी हो। तुम्हारा उसके साथ रहना धर्म है।'

आचार्य के बालों में उँगली घुमाती हुई नन्दा धीरे से बोली, 'अच्छी बात है।'

दोनो चुप थे। तूफान अपनी गति से आगे की ओर बढ़ता जा रहा था। सेठजी ने करवट ली और फिर खर्र्र्र-खर्र्र्र नाक बजाने लगे।

कुछ समय उपरान्त नन्दा ने पूछा, 'अभी आप अपने भाई साहब के विषय में कुछ बताते-बताते चुप हो गये थे न? क्या उनके विषय में....'

आचार्य ने करवट ली, 'कोई विशेष बात नहीं। भइया अब संसार में नहीं हैं।' आचार्य इस विषय को टालना चाह रहे थे।

'क्या हुआ था उनको?' नन्दा के प्रश्न ने आचार्य को उलझा दिया। आचार्य चक्कर में पड़ गये। क्या बतायें क्या न बतायें, यह वे शीघ्र निर्णय न कर सके।

नन्दा समझ गई, 'मैं इसकी गहराई तक पहुँच चुकी हूँ आचार्य। केवल आपसे वास्तविकता जानना चाहती थी। यदि उचित न हो तो कोई आवश्यकता नहीं। मुझे दुःख न होगा।'

आचार्य विवश हो गये। बोले, 'मेरे भइया कलकत्ता में काम किया करते थे नन्दा। बड़े उदार और शान्तिप्रिय मनुष्य थे। मैं बचपन से उन्हीं के साथ रहा हूँ। उनको मुझसे कितना स्नेह था, मैं कह नहीं सकता। इतवार या छुट्टियों के दिनों में वे स्वयं अपने हाथों मुझे नहलाते,

मेरे मैले कपड़ों को साफ करते। स्वयं फटे पुराने पहिनकर दफ़्तर जाते, लेकिन मुझे पुराने कपड़े पहिनते नहीं देख सकते थे। उनके साथ रहकर मैंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि माता और भाई के प्रेम में भी कोई अन्तर होता है। मुझे स्मरण है, उन्होंने अपने जीवनकाल में न कभी मुझे डाँटा और न मारा, किन्तु मैं डरता सबसे अधिक उन्हीं से था।

'एफ० ए० का परीक्षा-फल निकलने के बाद जब विश्वविद्यालय खुलने को आया तो भइया ने एक दिन पूछा—अब क्या करने का विचार है गोपाल ? गोपाल मेरे घर का नाम है। मैंने उत्तर दिया—चाहता तो था बी० एस्‌सी० करना, वैसे आपकी जो आज्ञा हो।

'मेरी तो हार्दिक इच्छा है कि तुम बी० एस्‌सी० हो जाओ; तुम्हें ग्रेजुएट देखकर मुझे जितनी प्रसन्नता होगी, शायद तुम उसकी कल्पना भी न कर सकोगे; विश्वविद्यालय खुलते ही नाम लिखवा लेना।—कहकर वह दफ्तर चले गये।

'तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा नन्दा, कि दूसरे दिन से भइया अपने खाने के लिए केवल सूखी रोटी और सब्जी ले जाने लगे। उसके पहले वह डालडा के बने पराँठे ले जाया करते थे। भइया केवल मुझे ही नहीं देखते थे वरन् मेरे और भी छोटे भाई-बहिन थे। उनको पढ़ाना, घर-द्वार देखना, माताजी और बाबूजी को किसी प्रकार कष्ट न हो, इसका हर प्रकार से प्रबन्ध करते थे। सारा बोझ उन्हीं के कन्धों पर था। लेकिन सब-कुछ वह खुशी-खुशी करते। कभी-कभी उन्हें तकलीफ भी होती। सोचते, क्या जीवन इन्हीं सूखी रोटियों के साथ समाप्त हो जायेगा, परन्तु यह स्मरण आते ही कि वह अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहे हैं सब-कुछ भूल जाते। उनके जीवन में केवल एक अभिलाषा थी और वह थी हम लोगों को शिक्षित और योग्य बनाना।

'वीरेश इटर पास करते ही इंग्लैंड चला गया था। उसके पिता उसे यहाँ नहीं रखना चाहते थे। वीरेश को इंग्लैंड मेरे ही कारण भेजा गया था।'

'क्यों ?' नन्दा को आश्चर्य हुआ।

'बात यह थी कि मैं आरम्भ ही से कांग्रेस में काम करता चला आ रहा था, अतः समय-समय पर मुझे जेल भी जाना पड़ा और वीरेश को भी। वीरेश मेरा साथ छोड़ने को किसी दशा में तैयार नहीं था। इन कारणों से उसके पापा को यही सीधा रास्ता दिखाई पड़ा और उन्होंने उसे इंग्लैंड भेज दिया। मैं अकेला रह गया।

'विश्वविद्यालय में आकर मैं अधिक जोर शोर से अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध काम करने लगा। यद्यपि मेरे इन कार्यों के पीछे भइया को कई बार हिदायतें भी मिलीं, पर उसकी चर्चा उन्होंने मुझसे कभी नहीं की। केवल इतना कह दिया करते थे—गोपाल ग्रेजुएट हो जाओ फिर चाहे जो करना। मैं जी कहकर चुप हो जाता। उसी जमाने में हम कुछ लड़कों ने मिलकर एक गुप्त पार्टी का निर्माण भी किया था, जो आज तुम्हारे सामने है।

'हम लोगों का कार्य बड़ी कुशलता और उत्साह के साथ होने लगा था। अंग्रेजी सरकार भी हमारे इन कार्यों से अनभिज्ञ नहीं थी, इसलिए पुलिस की दृष्टि मेरे ऊपर विशेष रूप से रहने लगी। किसी प्रकार दो वर्ष व्यतीत हुए। मैं बी० एस्सी० पास हो गया। उस दिन भइया कितने प्रसन्न थे, मैं बता नहीं सकता। जैसे उन्हीं ने परीक्षा पास की हो।

'मैं अधिकतर रात को भइया के साथ ही भोजन किया करता था। बिना मेरे भइया खाना नहीं खाया करते थे। परीक्षा-फल निकलने के बाद एक दिन उन्होंने भोजन करते समय रात को पूछा—नौकरी करने का विचार है या पढ़ने का ?

'उनके मुँह से यह प्रश्न सुनकर मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। फिर भी साहस बटोरकर धीमे स्वर में बोला—मैं तो कुछ और करनेवाला था, परन्तु जैसी आपकी आज्ञा होगी वही करूँगा।

'भइया मेरे भाव को समझ गये। बोले—तुम सम्भवतः देश-सेवा करना चाहते हो। ठीक है। वही करो। मैं अपने सुख के लिए तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहूँगा। यह था उनका त्याग।

'मैं कुछ दिनों बाद भइया से बिलकुल अलग होकर देश-कार्य में जुट गया।' गाड़ी कब मिर्जापुर और मुगलसराय रुकती हुई आगे बढ़ गई, आचार्य को नहीं मालूम। वह कहते गये, 'समय ने पलटा खाया नन्दा, बयालीस की क्रान्ति आरम्भ हुई। गाँधीजी ने "अंग्रेजो, भारत छोड़ो" का नारा लगाया ही था, अतः इसे सफल बनाने के लिए मैं कर्मक्षेत्र में अपने साथियों सहित उतर पड़ा। यद्यपि मैं पहले ही से सतर्क था फिर भी दुर्भाग्यवश एक दिन तुम्हारे पिताजी ने मेरा पता लगाकर मुझे पकड़वा ही तो लिया। जेल में मेरे ऊपर बड़ी कड़ी दृष्टि रखी गई। आरम्भ के दो-चार दिन तो मैंने जेल में खामोशी से गुजारे, फिर मैं इधर-उधर का पता लगाने लगा। संयोग की बात मेरे जेल से बाहर भाग जाने का प्रबन्ध हो गया और एक रात जब मूसलाधार पानी बरस रहा था मैं जेल से बाहर हो गया।

'इस बार फिर तुम्हारे पिता ने मुझे पकड़ने का भार लिया। मुझे सारे समाचार मिलते रहते थे और उसी के अनुसार काम किया करता था। मित्रों की सलाह से मैं कुछ दिनों के लिए कलकत्ता से दूर, जंगलों में चला गया। महीनों वहाँ व्यतीत हो गये तब लौटा। भइया को देखे बहुत दिन हो गये थे, अतः अवसर देखकर एक रात उनके यहाँ पहुँचा। लगभग बारह का समय होगा। मैंने खिड़की से देखा, वह लेटे हुए कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। मेरे खटखटाते ही उन्होंने किवाड़ खोले। देखते ही मुझे गले से चिपटा लिया, जैसे मा अपने खोये हुए पुत्र को पाकर चिपटा लेती है। मैंने उनकी ओर देखा तो वह रो रहे थे। तब तक भाभीजी भी जाग गईं। मैंने उनके पैर छुए और फिर बैठकर बातचीत करने लगा। बातें करते-करते दो बज गये, तब हम सब लेटे। भइया ने अपने साथ खाट पर लिटाया। अभी मुझे नींद भी नहीं आयी थी कि किसी ने बाहर से किवाड़ भड़भड़ाये। भइया सम्भवतः जाग रहे थे। लेटे-लेटे पूछा—कौन है?

'बाहर से कड़कती हुई आवाज आयी—जल्दी दरवाजा खोलो!

'मुझे आवाज पहचानते देर न लगी। ये तुम्हारे पिता के शब्द थे। मैं झट से उठा और बिना कुछ बोले अपनी छत से दूसरी छतों पर कूदता हुआ निकल गया; लेकिन जानती हो उसके बाद क्या हुआ ? तुम्हारे पिता ने अपने हत्यारे हाथों से भइया को गोली मार दी....'

नन्दा आचार्य की ओर आँखें फाड़कर देखती रह गई। आचार्य उठे और अपने बिस्तरे पर आकर लेट रहे।

नन्दा ने बैठे-बैठे सवेरा कर दिया। रह-रहकर उसके मन में यही बात उठ रही थी कि उसके पिता ने आचार्य के निरपराध भाई को गोली मार दी।

हावड़ा स्टेशन से बाहर आकर नन्दा बोली, 'मैं तो पिताजी के पास जा रही हूँ। अब आपसे भेंट कहाँ होगी ?'

'मेरे साथ नहीं चलोगी ?'

'ऊँहूँ ! इस समय नहीं। बोलिए, आप कहाँ मिलिएगा ?'

'कल सन्ध्या को छह बजे इसी प्लेटफार्म पर।'

और दोनो अलग-अलग हो गये।

२१

रघुनाथराव किसी विशेष कार्यवश चाय पीकर बहुत तड़के ही बाहर चले गये थे। नन्दा कमरे में बैठी कल की बातें सोच रही थी। अचानक किसी मोटर की भरभराहट से उसका ध्यान बाहर को खिंच गया। देखा तो सामने वीरेश चला आ रहा था। वह कुछ घबड़ा-सी गई।

'आप ! यहाँ !!'

'जी ! घबड़ाने की कोई बात नहीं। आपके कामों में किसी प्रकार की रुकावट नहीं पड़ेगी ?' वीरेश के स्वर में व्यंग्य था।

'क्या मतलब ?'

'मतलब मुझसे पूछती हो ? नादान हो न ? बड़ी चरित्रवान बना करती थी। खैर, जो कुछ तुमने किया, ठीक ही किया। अब मेरे किये को देखना। तुम्हें सचेत किये जाता हूँ।' और वह लौट गया।

नन्दा हतबुद्धि-सी देखती रह गई। उसे कुछ कहने का अवसर ही न मिल पाया।

अभी तक नन्दा के सामने एक उलझन थी, अब दूसरी आ खड़ी हुई। वीरेश की बातों से विदित हो गया कि वह कुछ और करनेवाला है। वह चिन्तित हो उठी, पर करती क्या। आचार्य का पता भी तो उसे मालूम न था। मन मसोसकर सन्ध्या की प्रतीक्षा में बैठ गई। किसी प्रकार दिन कटा। सूर्य देवता ढलने को आये। साढ़े पाँच बजते-बजते वह प्लेटफार्म पर आ पहुँची। आधा घंटा उसने बड़ी बेचैनी से टहलते हुए व्यतीत किया। ठीक छह बजे आचार्य आये। नन्दा आचार्य का हाथ पकड़कर खींचती हुई एक ओर ले गई।

उन्होंने नन्दा की ओर देखते हुए पूछा, 'मामला क्या है ? इतनी घबड़ाई हुई क्यों हो ?'

'चलिए उस बेंच पर बैठकर बतलाऊँगी।'

नन्दा ने सारी बातें एक-एक करके सुनाईं। आचार्य का चेहरा फक पड़ गया। 'क्या हो गया नन्दा ?' उनके मुँह से निकल पड़ा।

कुछ देर सोचते रहने के बाद वह बोले, 'तुम जाओ। आज रात किसी गाड़ी से मैं कानपुर लौट जाऊँगा। जिसका भय था वही हुआ।'

'और यहाँ जिस काम से आये थे उसका क्या होगा ?'

'लगभग सुलझा ही समझो। दो-एक आनाकानी कर रहे हैं, उनको भी अभी समझा-बुझाकर ठीक किये लेता हूँ।'

'तो आप रात की गाड़ी से अवश्य चले जायेंगे ?'

'न जाने से काम बिगड़ जाने की सम्भावना है। वीरेश कानपुर लौट गया होगा। इसे तुम निश्चय ही मानो।'

'फिर मैं ?'

'तुम दो-चार दिन और रुककर आना। अब तुम जाओ। कानपुर आते ही मिलना।'

नन्दा उठकर चली गई।

*

पहाड़ी पर आज सब एकत्रित थे। वीरेश भी आचार्य की बगल में बैठा हाँ-में-हाँ मिला रहा था। उसके भावों को देखकर यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि उसके हृदय में किसी प्रकार का पाप या वेदना है। वह सदैव की भाँति प्रसन्नमुख बैठा बातें कर रहा था।

आचार्य ने उड़ती हुई दृष्टि से सबकी ओर देखते हुए कहा, 'बम्बई में मजदूरों ने हड़ताल आरम्भ कर दी है, इसे तो आप सब जानते ही हैं और आप यह भी जानते हैं कि सरकार उसे असफल करने के लिए जी तोड़ प्रयत्न करेगी, चाहे जिस प्रकार भी हो। इसी हेतु मैंने आप लोगों को बुलाकर इस विषय पर कुछ विचार-विमर्श कर लेना उचित समझा। भाभीजी ने बम्बई से आये हुए पत्रों को दिखाया था। उन लोगों ने मुझे तथा कुछ अन्य कार्यकर्ताओं को बुलाया है।'

आचार्य कुछ रुकते हुए आगे बोले, 'मैं सोचता हूँ कि कल वीरेश कुछ लोगों को लेकर किसी गाड़ी से बम्बई चले जायें और दो चार दिनों बाद मैं भी भाभीजी के साथ चार-छह लोगों को लेकर पहुँच जाऊँ। मजदूरों की इस आवाज को सफल बनाना ही होगा। अब आप लोग जैसी राय दें।'

अभी कोई बोले-बोले उसके पहले ही वीरेश बोल उठा, 'ठीक है। मैं कल चला जाऊँगा। अभी वहाँ विशेष काम भी नहीं है, तब तक तुम भी आ ही जाओगे।'

सब लोगों ने सर्वसम्मति से आचार्य के प्रस्ताव का समर्थन किया। बात तय हो गई। इसके उपरान्त बहुत समय तक यह निश्चित होता रहा कि कल कौन-कौन वीरेश के साथ जायेगा और कौन-कौन आचार्य

के साथ। वीरेश जब उठने लगा तो आचार्य ने हाथ पकड़ते हुए कहा, 'रुको ! मुझे तुमसे कुछ कहना है।'

आचार्य उसे लेकर ऊपर चले गये।

'तुम कलकत्ते गये थे ?' चट्टान पर बैठते हुए आचार्य ने पूछा।

'हाँ, गया था। परन्तु उसी दिन लौट आया।'

'तुम्हें मालूम तो था कि मैं वहीं हूँ ?'

वीरेश की इच्छा हुई कि कुछ कहे, किन्तु जाने क्या सोचकर रह गया। फौरन अपने भाव बदलता हुआ बोला, 'मेरे और नन्दा के बीच ऊटपटांग झड़प हो गई, उसी क्रोध में लौट आया। यद्यपि बाद में मैंने अनुभव किया कि तुम्हारे प्रति इस प्रकार सन्देह करना अन्याय ही था, लेकिन क्रोध को क्या कहा जाये !' वीरेश ने आचार्य को चकमा दिया।

'कभी-कभी,' आचार्य वैसे ही सरल भाव से कह रहे थे, 'गलतफहमी हो जाया करती है। इसे आपस में बैठकर दूर कर लेना चाहिए। यही तरीका अच्छा होता है। मुझे....'

बीच में वीरेश ने काटा, 'क्या कहते हो आचार्य ! हम-तुम बचपन से साथ-साथ रहे हैं। एक-दूसरे को भली-भाँति जानते हैं, समझते हैं। अब रात काफी हो गई है। नींद भी आने लगी है। चलो सोयें। शायद अब हमारी-तुम्हारी भेंट बम्बई ही में होगी।'

और वीरेश नीचे उतर आया।

*

पहाड़ी पर आचार्य, मधुकर और भाभीजी बैठी नाना प्रकार की कल्पनाएँ कर रही थीं। विभिन्न प्रकार की चिन्ताएँ और शंकाएँ सब के मन में उठ रही थीं। वीरेश को गये आज आठ दिन हो गये थे, लेकिन अभी तक कोई समाचार नहीं आया था। इधर नन्दा के विषय में भी कुछ विदित नहीं हुआ था। अचानक मधुकर चिल्लाया, 'नन्दा देवी आ गईं। नन्दा देवी आ गईं।' भाभीजी और आचार्य ने देखा—सामने नन्दा चढ़ती चली आ रही थी।

नन्दा ने बढ़कर भाभीजी के पैर छुए और भर्राई हुई आवाज में बोली, 'क्षमा कीजिएगा; मुझे पहले आपके विषय में पूर्ण रूप से जानकारी नहीं थी। उस दिन कलकत्ते जाते समय सारी बातें गाड़ी में मालूम हुईं। जो दुःख मुझे है उसे क्या बताऊँ ?'

नन्दा की आँखें डबडबा आई थीं।

भाभीजी नन्दा के सिर पर हाथ फेरती हुई बोलीं, 'बीती बातों को नहीं सोचते पगली। फिर तू तो समझदार लड़की है। कलकत्ते से कब आई ?'

पति के स्मरण ने भाभीजी की कोरों को भी भिगो दिया था।

'कल रात। पिताजी भी आये हैं।'

'तुम इस समय कैसे आई हो ?'

'अपनी मोटर से।'

'अकेले ?'

'जी।'

'और यदि रास्ते में मोटर बिगड़ जाती, तो ?'

नन्दा चुप रही।

'ऐसी गलती नहीं करनी चाहिए।' भाभीजी ने समझाया।

आचार्य की ओर देखते हुए नन्दा ने पूछा, 'वीरेश बाबू कहाँ हैं ?'

'बम्बई गये हैं। मज़दूरों ने हड़ताल की है न। मैं भी कल-परसों में जा रहा हूँ।'

'हूँ !'

'क्यों ?' आचार्य ने नन्दा के भाव को ताड़ते हुए पूछा।

'बम्बई सँभलकर जाइएगा। मेरे पिताजी भी आज रात की गाड़ी से जा रहे हैं। बहुत आशा है मैं भी उनके साथ जाने का प्रयत्न करूँ। पिताजी ने कार्यक्रम अचानक ही बना लिया है। इसके पहले उनका कहीं आने-जाने का विचार नहीं था।'

आचार्य के माथे पर पसीना आ गया था।

'वहाँ का पता तो बता दीजिए। यदि आ सकी तो आप से मिलूँगी। यही पूछने आई थी।' नन्दा उठती हुई बोली।

'रुको। मैं भी चल रहा हूँ। मधुकर, तुम भी मेरे साथ शहर चलो।'

नन्दा ने भाभीजी के पैर छुए और तीनो धीरे-धीरे पहाड़ी से उतरने लगे।

२२

विक्टोरिया टर्मिनस पर पुलिसवालों की अपार भीड़ देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि रहस्य क्या है। गाड़ी से आये प्रत्येक यात्री के विषय में पूर्णरूप से जानकारी कर लेने के उपरान्त ही उसे स्टेशन से बाहर जाने दिया जाता था। प्रत्येक की तलाशी ली जा रही थी। रघुनाथराव झिगड़ेवाला सफेद कुरता-पाजामा पहने प्लेटफार्म पर इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे। यह सारा प्रबन्ध उन्हीं का था।

दिन के दस बज रहे थे। बाम्बे एक्सप्रेस के आने का समय हो गया था। गाड़ी आई। लोग उतरने के लिए आपस में धक्कम्-धुक्का करते हुए इधर-उधर भागने लगे। प्रथम श्रेणी के डिब्बे से एक नवाब साहब दुपल्ली टोपी और काली अचकन में, पैरों में सुनहले काम का नागरा पहने अपनी बेगम साहिबा के साथ उतरे। बेगम साहिबा बहुत अच्छे किस्म के काले साटन का बुर्का ओढ़े हुए थीं। पैर में जरी की जूती चकाचौंध कर रही थी। गाड़ी के खड़े होते ही नौकरों ने छोटी-सी मखमली कालीन बिछा दी जिस पर नवाब साहब अपनी बेगम के साथ उतरकर खड़े हो गये। दोनो ओर दो नौकर यात्रियों को इधर-उधर बचकर चलने का संकेत कर रहे थे।

कुलियों ने जब सामान उतार लिया तो एक नौकर ने आकर कहा, 'ग़रीबपरवर, सामान उतर चुका है।'

'अच्छी बात है। चलने की तैयारी करो।'

जैसे ही नवाब साहब चलने को हुए नौकरों ने फौरन एक लम्बी-सी पतली चादर फर्श पर बिछा दी। नवाब साहब अपनी बेगम के साथ उस पर चलने लगे। आगे-आगे चादर बिछती और नवाब साहब बेगम से धीरे-धीरे मुस्कराते हुए बातें करते बड़े अन्दाज से चले जा रहे थे। प्लेटफार्म की सारी जनता और पुलिस इन्हीं लोगों को देख रही थी। अजीब नक्शा था। किसी कारणवश रघुनाथराव उधर से निकले ही थे कि नवाब साहब ने एक नौकर से उन्हें बुलाने का संकेत किया।

'कहिए ?' रघुनाथराव ने आकर पूछा।

'माफ कीजिएगा। मैंने यह जानने के लिए आपको तकलीफ दी कि आज इस स्टेशन पर कोई खास बात है ? पुलिस का बड़ा सख्त इन्तजाम किया गया है। आप शायद यहीं के रहनेवाले होंगे ?' नवाब साहब चलते भी जा रहे थे।

'यही समझिए। एक की गिरफ्तारी होनी थी। देखिए, क्या होता है ? वह आनेवाला तो इसी ट्रेन से था।'

'उफ्, आदमी बड़े खौफनाक किस्म का मालूम होता है। लेकिन साहब कमाल है पुलिसवालों को भी और खासकर सी० आई० डी० वाले तो बहुत ही होशियार हैं। एक-एक बात उन्हें मालूम रहती है।'

रघुनाथराव मुस्कराते हुए बोले, 'कोशिश ऐसी ही की जाती है। अच्छा अब मैं आपसे इजाजत चाहूँगा।'

'जी हाँ, जी हाँ। शौक से !' नवाब साहब ने हाथ मिलाया।

रघुनाथराव चले गये। नवाब साहब भी स्टेशन के बाहर हो गये।

२३

कानपुर से चलते समय रघुनाथराव ने बहुत चाहा कि नन्दा उनके साथ बम्बई न चले, मगर नन्दा ने उनकी एक न सुनी। विवश होकर उसको साथ लेना ही पड़ा। तब उन्होंने नन्दा की मा को भी साथ ले लेने का इरादा किया, परन्तु उन्होंने जाने से बिलकुल इनकार कर दिया। उनके लिए क्या बम्बई, क्या कानपुर, सब समान थे।

बम्बई के सुपरिंटेंडेंट पुलिस ने रघुनाथराव को बड़े आवभगत से लिया और अपने बँगले में ठहराया। प्रबन्ध में किसी प्रकार की त्रुटि न हो, यह आदेश उन्होंने नौकरों और घरवालों को दे दिया। जिस दिन रघुनाथराव बम्बई स्टेशन पर कुरता-पाजामा पहने घूम रहे थे उसी दिन आचार्य को आना था। नन्दा को इसकी सूचना थी, लेकिन यह खबर रघुनाथ रख को भी है और उन्होंने आचार्य को पकड़ने के लिए स्टेशन पर बड़ी तैयारी कर रखी है, इसे वह नहीं जानती थी। सन्ध्या को जब रघुनाथराव थके और निराश लौटे तो नन्दा ने पूछा, 'आज आप बड़े चिन्तित दिख रहे हैं ? मालूम होता है यहाँ भी आप के जिम्मे कोई काम दे दिया गया है ? सवेरे के गये सन्ध्या हो गई।'

आरामकुर्सी पर लेटते हुए रघुनाथराव बोले, 'क्या बतायें, इतना परिश्रम करने पर भी काम नहीं बन पाया।'

'काम कौन-सा था ?' नन्दा बगल में कुर्सी खींचकर बैठ गई।

'तुम्हें याद होगा, कानपुर में एक दिन शाम को तुम एक बाँसुरी-वाले को लायी थी, जिसके विषय में मैंने बाद में कुछ बताया भी था। तुम्हें उस दिन मेरी बातों पर विश्वास नहीं हुआ, किन्तु मेरी बातें सच निकलीं। वही व्यक्ति आज बम्बई में आनेवाला था। सरकार को उससे बड़ा भय है। सम्भव है उसके आने से हड़ताल की रूपरेखा कुछ और हो जाये। उसी की गिरफ्तारी के लिए सवेरे से स्टेशन पर लगा हुआ था, परन्तु सब बेकार हुआ।'

'लेकिन आपको क्या मालूम कि वह आज ही आनेवाला था ? सम्भव है कल आ गया हो या कल-परसों में आये ।' नन्दा अनजान की भाँति पूछ रही थी ।

'तुम्हें शायद मालूम नहीं । वीरेश बाबू तो उसके साथी रह चुके हैं । उन्हें उसकी प्रत्येक बातें विदित हैं । वीरेश के ही पास तो आज उसके आने की सूचना थी । क्या तुम्हारी उनसे भेंट नहीं हुई ?'

'मुझे नहीं मालूम कि वीरेश बाबू बम्बई में हैं ? खैर ! आप स्नान कीजिए ।'

रघुनाथराव उठकर चले गये ।

स्नान आदि से निवृत्त होकर उन्होंने जलपान किया और कपड़े पहिन-कर बाहर जाने लगे तो नन्दा ने टोका, 'जल्दी लौटिएगा । रात को खाना ठंडा हो जाता है ।'

'अच्छा-अच्छा । जरा मेरी छड़ी तो देना बेटे । वहीं कोने में रखी होगी ।' रघुनाथराव बाहर से बोले ।

नन्दा ने छड़ी लाकर दी । उसी समय एक टैक्सी बँगले के फाटक में मुड़ी ।

टैक्सी से उतरते ही वीरेश नन्दा को सम्बोधित करके बोला, 'कल जब मैं आया था तब तो आप नहीं थीं ।' उसके चेहरे कर हवाइयाँ उड़ रही थीं ।

'बाजार घूमने चली गई थी ।'

'वीरेश बाबू,' रघुनाथराव ने पूछा, 'आपने....'

'आप पहले घूम तो आइए ।' नन्दा ने टोका, 'बातें फिर होंगी ।'

'जी हाँ । घूम आइए ।' बात टलने से वीरेश की जान-में-जान आई ।

रघुनाथ रव कुछ सोचते हुए छड़ी घुमाते चले गये ।

नन्दा क्रोध से काँप रही थी । कमरे में बैठते ही उबल पड़ी, 'उस दिन तो आप मुझे पतिता बनाकर चले आये थे । किन्तु आज आपने अपनी क्षुद्रता का कुछ अनुमान लगाया ? आपको लज्जा नहीं आती ?

केवल मेरे पीछे आचार्य के सारे जीवन की कमाई, जिसको उन्होंने अपने प्यारे भाई की आहुति देकर प्राप्त किया, नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहते हैं। यह करते आपको कसक नहीं हो रही है ? माना आपको कोई ईर्ष्या थी। ठीक है। लेकिन उसका बदला आपको मुझसे लेना था। आचार्य से प्रेम करने मैं गई थी। आचार्य मुझसे प्रेम करने नहीं आये थे। मेरी सँगनी आपसे हुई थी अवश्य, परन्तु जिस दिन मैंने आचार्य को आचार्य के रूप में देखा, उसी दिन से मैं आपसे कटने लगी थी। सम्भवतः आपने भी इसका अनुभव किया होगा। आपको उन्हीं दिनों मुझसे पूछ लेना चाहिए था, किन्तु आपने ऐसा न करके दूसरा रास्ता पकड़ा।'

वह बोलती ही गई, 'माना मैंने गलती की। आपके साथ छल किया, परन्तु किया तो मैंने था। इसमें आचार्य का क्या दोष ? मैं कोई नादान तो थी नहीं कि आचार्य मुझे बहका ले गये या मेरे पर जादू-टोना कर दिया। मैं स्वयं उन पर आकर्षित हुई थी। बदला आपको मुझसे लेना चाहिए था, न कि उनसे। मुझे मालूम है, आपने ही पिताजी को कलकत्ते से यहाँ बुलाया है। आपने ही पिताजी को आचार्य के आने की सूचना देकर पकड़वाने का प्रबन्ध करवाया था, जब कि आचार्य ने आपको अपना समझकर अपने आने की सूचना आपको भेजी थी। क्या ये आपके नीच कार्य मेरे उस कार्य से अच्छे हैं ? आप तो उनके बचपन के मित्र थे ? क्या मित्रता की यही गहराई है कि एक औरत के पीछे....'

'नहीं, मित्रता की गहराई यह है कि अपने मित्र की होनेवाली स्त्री को साथ-साथ लेकर घूमे और उससे प्रेम प्रदर्शित करे !'

'लेकिन इस विषय में कभी अपने आचार्य से पूछा भी था ?'

'सब पूछा है। मुझे उपदेश न दो। मैं तुम्हें और आचार्य को भली-भाँति जानता हूँ।' वीरेश उठ खड़ा हुआ।

'अभी आप मुझे नहीं जानते मिस्टर वीरेश। आचार्य का अहित करके आप सुखी न हो सकेंगे। इसे आप निश्चय समझें।'

'सब-कुछ समझा हुआ है। जो एक को छोड़ दूसरे के पास जा

सकती है उसे क्या पहचानना और क्या जानना ? यह धमकी उसे देना जो तुम्हें जानता न हो ।' वीरेश कमरे के बाहर हो गया ।

नन्दा ने भी कपड़े बदले और फौरन एक टैक्सी करके आचार्य से मिलने चल पड़ी । बतलाये हुए स्थान पर कार रोकते हुए ड्राइवर ने कहा, 'गली में, मेम साहब, गाड़ी नहीं जा सकती ।'

नन्दा ने पैसे दिये और गली में चल पड़ी । दूर जाने पर दाहिनी ओर एक और सँकरी गली थी । नन्दा उसमें मुड़ी ही थी कि सामने मधुकर से भेंट हो गई । वह नन्दा के साथ लौट पड़ा ।

मकान अन्दर से बहुत लम्बा-चौड़ा दिख रहा था । कई कमरों से होते हुए ये लोग एक आँगन में पहुँचे । इस आँगन को छोड़कर ये लोग अन्दर बढ़े । आगे एक और आँगन मिला । इस आँगन के चारो ओर बहुत-से कमरे थे । मधुकर बायीं ओरवाले एक कमरे में घुसते हुए बोला, 'सँभलकर नीचे उतरिएगा । बड़ा अँधेरा है ।'

नीचे आने पर नन्दा ने देखा, सामने एक कमरे में प्रकाश हो रहा है और आचार्य बैठे कुछ लोगों से बातें कर रहे हैं । ये लोग बम्बई के कार्यकर्ता थे । नन्दा को देखते ही आचार्य बोल उठे, 'आओ ! आओ ! आज सवेरे तो बड़ा लुत्फ रहा । तुम्हारे पिताजी से भी बातें हुई थीं ।'

'तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा,' उन्होंने बड़े जोरों से हँसते हुए कहा, 'भाभीजी मेरी बेगम साहिबा बनी थीं ।'

'पर आपके आने की सूचना मेरे पिताजी को दी किसने ? आपको कुछ ज्ञात है ?' नन्दा का क्रोध अभी तक शान्त नहीं हुआ था ।

'वीरेश ने । क्या मैं इतना भी नहीं समझ सकता । उसी ने तुम्हारे पिताजी को कलकत्ते से यहाँ बुलाया है । मैंने अपने आने की सूचना देकर उसे सँभलने का दूसरा अवसर दिया था । परन्तु वह न सँभल सका । खैर, होगा । तुम अपना समाचार सुनाओ । कोई नयी बात ?'

नन्दा ने वही बातें बतायीं जो उसके और वीरेश के बीच कुछ देर पहले हुई थीं ।

'लो हुई न वही बात। खैर, तुम्हारी बातों से उसे विदित हो गया कि उसके नीच कार्यों का भंडाफोड़ हो चुका है।' आचार्य हँस रहे थे।

'लेकिन आगे के लिए आपने क्या सोचा है ? अब तो पग-पग पर आपके लिए संकट है।'

'सो तो ठीक है....' कुछ सोचते हुए उन्होंने कहा, 'अच्छा, आज रात हम लोग इस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चले चलेंगे और वहीं यह निर्णय कर लिया जाय कि वीरेश के साथ अब कैसा बर्ताव किया जाना चाहिए। ठीक है न ?'

'हाँ ठीक है।'

इसके उपरान्त आचार्य कल से आरम्भ होनेवाले अपने कार्यक्रम के विषय में बतलाते रहे। किस-किस दिन किस-किस स्थान पर किस समय, किस वेशभूषा में देखे जा सकते हैं, आदि-आदि बातें बतायीं। उन्होंने उठते हुए कहा, 'चलो नन्दा, तुम्हें नयावाला स्थान भी दिखा दूँ। आइए आप लोग भी चलिए।'

सब उठ खड़े हुए।

२४

मजदूरों का संगठन और उनकी एकता सराहनीय थी। अँग्रेजी शासन ने जुलूस निकालने पर पाबन्दी लगा दी थी। कहीं भी एकत्रित होकर सभा करना गोलियों का शिकार होना था। फिर भी नित्य जुलूस निकलते थे। सभाएँ होती थीं और फलस्वरूप अंग्रेजी सरकार हुकुम-उदूली में लाठी-गोली चलवाती थी। किसी का हाथ टूटता तो किसी का सिर फटता और अन्त में गोलियों के चलने पर जानें जातीं; परन्तु मजदूर अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ थे। उन्हें बापू के बतलाये हुए सिद्धान्तों पर चलना

था । वे अपनी एकता की शक्ति द्वारा सिद्ध कर देना चाहते थे कि निहत्थे होकर भी वे हथियारवालों को परास्त करने की क्षमता रखते हैं ।

मजदूरों के इस अदम्य उत्साह को देखकर संसार के कोने-कोने से सहानुभूति के सन्देश आये और उनके कार्य की सराहना की गई ।

आज सन्ध्या को कोई सभा नहीं हुई थी । केवल दिन में जुलूस निकालकर कार्यक्रम समाप्त कर दिया गया था । रात के ग्यारह बज चुके थे । मजदूरों के मुहल्ले में अब भी दस-दस पाँच-पाँच के गोल में बैठे मजदूर आपस में बातचीत कर रहे थे । जब से इन लोगों ने हड़ताल आरम्भ की है इनके खाने-पीने, सोने-उठने का कुछ नियम ही बदल गया है । ये अधिकतर आधीरात तक बैठे नाना प्रकार के विषयों पर टीका-टिप्पणियाँ किया करते हैं ।

'देखा, मैं तो बहुत पहले से,' एक गन्दा-सा आदमी, जिसके सिर और दाढ़ी के बाल घुटे हुए थे, गली में चिल्लाता हुआ घुसा, 'कहता चला आ रहा हूँ कि इन सूखी रोटियों को खानेवालों को अधिक-से-अधिक आराम और सुख देकर अपनी ओर मिलाने की कोशिश करो नहीं तो जब ये तुम्हारी जड़ खोदने पर उतर आयेंगे तो तुम्हारे लिए बड़ी परेशानी हो जायेगी । पर तुम क्यों मानने लगे ? तुम्हें तो अपनी हुकूमत पर घमंड है न ? परन्तु अब मैं देखूँगा कि तुम्हारी ताकत बड़ी है या इन टुकड़ों पर पलनेवालों की ? तुमने शायद यह नहीं सोचा था कि जिस दिन ये हड्डियों के पुतले कमर कसकर बाहर निकल पड़ेंगे उस दिन तुम्हारी क्या, दुनिया की सभी हुकूमतें इकट्ठी मिलकर भी इनका सामना करना चाहें तो भी नहीं कर सकतीं ।'

फिर उसने एक मजदूर के कन्धे को हिलाकर पूछा, 'क्यों भाई, तुमने हड़ताल इसी लिए की है न कि तुम्हें तुम्हारे काम के हिसाब से पैसे कम मिलते हैं ? ठीक है न ? अब कदम तो पीछे नहीं हटाओगे न ?'

'बात कहकर मुकरने के लिए हड़ताल थोड़े किया है महाराज ।' उसने उत्तर दिया ।

'शाबाश !' वह उस मजदूर की पीठ ठोककर उछल पड़ा और हँसता हुआ आगे बढ़ गया।

आगे कुछ और मजदूर बैठे बातें कर रहे थे। वह जाकर बैठ गया। और बोला, 'तुम लोगों ने भी हड़ताल की है ? हमारे भी कुछ लोग जान-पहचान के हैं। उन लोगों ने भी हड़ताल कर दी है।'

'साईंजी, यह हड़ताल कोई एक-दो आदमियों की है ? इसे तो बम्बई के सारे मजदूरों ने किया है, सारे मजदूरों ने।' उनमें से एक मजदूर बोला।

'ठीक है। मैंने भी अपने मालिक से कह दिया है कि यदि वह मेरी नहीं सुनेगा तो मैं भी हड़ताल कर दूँगा, काम बन्द कर दूँगा।'

'वाह,' मजदूर मुस्कराने लगा, 'तुम भी कहीं काम करते हो ?'

'क्यों नहीं ? मैं दिन-रात घूम-घूमकर परमात्मा से तुम लोगों की जीत के लिए प्रार्थना किया करता हूँ। क्या यह काम नहीं है ?'

'क्यों नहीं है। ऐसे ही किये जाओ साईंजी। जिस दिन जीतेंगे तुम्हें भरपेट मिठाई और पूरी खिलाएँगे।'

'हिम्मत न हारना। जीत तो तुम्हारी होगी ही। अब कल मिलेंगे।' वह अपने कपड़े झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ।

आचार्य के इस प्रकार के कार्यक्रम से मजदूरों को काफी प्रोत्साहन मिलता था। उनकी शिथिल होती हुई नाड़ियों में फिर से खून दौड़ने लगता था। इधर भाभीजी भी मजदूरों की स्त्रियों में बैठ-बैठकर उन्हें हर तरह से समझाने-बुझाने का काम कर रही थीं। काम बड़े ढंग से चल रहा था। कुछ कार्यकर्ता वीरेश की टोह में इधर-उधर घूम रहे थे। आचार्य की कार्यकारिणी ने सर्वसम्मति से यह निर्णय कर दिया था कि जब तक हड़ताल रहे वीरेश को पकड़कर किसी एकान्त स्थान में बन्द कर दिया जाये। यद्यपि इस निर्णय को हुए कई दिन हो चुके थे, परन्तु अभी तक वीरेश किसी के हत्थे नहीं चढ़ा था।

*

काम की अधिकता और दिन-रात दौड़-धूप के कारण आज भाभीजी को कुछ हरारत महसूस हो रही थी। अतः आज वह कहीं न जा सकीं। सन्ध्या को जब नन्दा ने आकर देखा तो उनको अधिक ज्वर था। वह काफी समय तक उनके पास बैठी रही। लगभग ६ बजे उनको सुलाकर वह निकली। उस समय तक आचार्य वहाँ नहीं आये थे।

नन्दा अपने बँगले के फाटक पर पहुँचकर ठिठक गई। सामने दिखाई पड़ा—वीरेश और उसके पिता बातें कर रहे थे। वह लौट पड़ी। पीछे-वाले फाटक से घुसकर खिड़की के पास आकर बातें सुनने लगी। वीरेश कह रहा था, 'मैं अब जा रहा हूँ। जहाँ मैंने बतलाया है उसी स्थान पर मुझसे मिलिए, घंटे-भर बाद। आज सब-कुछ निपटा दूँगा। समझे आप ?' वीरेश कह उठा।

रघुनाथराव ने सिर हिलाया।

नन्दा भी पैर बढ़ाती हुई बाहर निकली और एक टैक्सी करके नये-वाले मकान पर पहुँची। आचार्य अभी तक नहीं आये थे। भाभीजी बेखबर सो रही थीं। वह वहाँ से निकलकर मजदूरों के उस मुहल्ले में पहुँची जहाँ आचार्य का होना अनिवार्य था, परन्तु दुर्भाग्यवश आचार्य वहाँ भी न मिले। वह घबड़ा गई। क्या करे ? कहाँ जाये ? उसे रुलाई आने लगी।

'सम्भवतः अब आचार्य से भेंट होना कठिन है।' उसने सोचा।

'अब कहाँ चलना होगा मेम साहब ?' ड्राइवर ने उसके विचारों को झटका दिया।

इतने में पीछे से कुछ भन्नाहट की आवाज आयी और एक मोटर-साइकिल तेजी से निकल गई। नन्दा ध्यान से देखती हुई बोली, 'इसके पीछे चलो ड्राइवर, बहुत जल्दी !'

मोटर-साइकिल मोड़ से मुड़कर आगे निकल चुकी थी। चालक ने अपनी मोटर-साइकिल रोकते हुए उस व्यक्ति को टोका जो गली में मुड़ रहा था, 'कहाँ जा रहे हो ?'

'तुम्हें दिखाई नहीं देता ?' आचार्य ने स्वर पहचान लिया था।

'मुझे तो तुम भूल ही गये होगे ?'

'तुम्हें नहीं, तुम्हारे अस्तित्व को।' कहकर आचार्य ने चलने के लिए पैर उठाया।

वीरेश को क्षण-भर सोचना पड़ा और तब उसका हाथ कोट की जेब में चला गया। उसने पिस्तौल निकाला और काँपते हुए हाथ से गोली दाग दी।

गोली हृदय में न लगकर जाँघ में लगी। स्वाभाविक था। मित्र का हृदय जिस परिस्थिति में आकर इतना कठोर बन गया था वैसी ही परिस्थिति हाथ के लिए भी तो होनी चाहिए थी।

आचार्य के मुँह से आह निकली और वह लड़खड़ाकर गिर पड़े।

वीरेश में अब विशेष सतर्कता आई। अपराधी का भला जी कितना ? घबड़ाहट बढ़ गई। अचानक सामने से किसी मोटर की रोशनी दिखलाई पड़ी। उसने सोचा, रघुनाथराव आ रहे होंगे। परन्तु शीघ्र ही अपराधी के मन ने खंडन किया—इतनी जल्दी ? उसने मोटर-साइकिल स्टार्ट की। मोटर समीप आ चुकी थी। वीरेश ने ध्यान से देखा। वह रघुनाथराव की मोटर नहीं थी। उसके पास सोचने के लिए पल-भर का भी समय नहीं था। उसने सीट पर बैठते ही हवा से होड़ लगा दी।

नन्दा ने मोटर-साइकिल चालक को भागते देखा। उसे सन्देह हुआ। उसने उस स्थान पर अपनी मोटर रुकवायी। इधर-उधर देखा। गली के मोड़ पर उसे कोई आकृति पृथ्वी पर लोटती दिखलाई पड़ी। वह लपककर गई। 'आचार्य !' उसका गला रुँध गया। आँखें छलछला आईं।

'जल्दी करो नन्दा। मुझे सहारा दो। मैं तुम्हारी मोटर तक चल सकता हूँ। विलम्ब करना उचित नहीं।'

नन्दा के गले में हाथ डालकर आचार्य रेंगते हुए मोटर में आकर लेट गये। नन्दा आगे की सीट में ड्राइवर की बगल में बैठी।

२५

नयेवाले मकान में आचार्य शान्त चित्त लेटे हुए थे। शहर ही में पार्टी का डाक्टर था, जो मरहम-पट्टी करके लौट गया था। आचार्य की खाट के चारों ओर चिन्ताग्रस्त कार्यकर्ता विभिन्न पहेलियों में उलझ रहे थे। सिरहाने भाभीजी आचार्य के सिर पर हाथ फेरती मौन सोच रही थीं। भाभीजी का ज्वर इस समय अधिक न था। नन्दा भी वहीं पास में बैठी हुई थी।

कुछ समय उपरान्त आचार्य धीरे से बोले, 'इसमें सब लोगों के चिन्तित होने की कौन-सी बात है भाभी? अभी चार-छह दिनों में ठीक हुआ जाता हूँ। काम जैसे चल रहा था वैसे ही अब भी चलेगा। आप लोग तनिक भी फिक्र न करें। रास्ता ठीक है तो मंजिल भी मिलेगी।'

किसी ने कुछ कहा नहीं। थोड़ी देर के लिए फिर निस्तब्धता फैल गई। 'तुमने ठीक से सोचा नहीं।' भाभीजी बोलीं, 'मेरे लिए तुम्हारा व्यक्तित्व अधिक महत्व रखता है। तुम्हारे जीवन ही से मेरा जीवन है और सम्भवतः इस पार्टी का भी। इसे....'

'परन्तु मुझे कुछ हुआ हो तब न भाभी! घाव के पूरने में कितना विलम्ब? तुम्हारे अनुमान से पहले मैं स्वस्थ हो जाऊँगा।'

'कहने और होने में बड़ा अन्तर है। तुम जैसा सोचते हो वैसा ही होगा, यह बिलकुल भ्रम है। इसके लिए समय की आवश्यकता है और इस कुसमय को निर्भयतापूर्वक काटने के लिए एकान्त स्थान की आवश्यकता है।'

'तुमने तो बात का बतंगड़ बना दिया। शायद तुम्हारी ममता तुम्हें वास्तविकता से दूर घसीटे लिये जा रही है। है न?'

'खैर, ममता ही समझ लो, किन्तु इस ममता के पीछे वास्तविकता भी है। तुम्हें किसी भी दशा में मैं यहाँ रखना उचित नहीं समझती।' उन्होंने बैठे हुए कार्यकर्ताओं की ओर देखा, क्यों आप लोगों का क्या

विचार है ? इनके यहाँ रहने से लाभ की आशा तो है ही नहीं, सम्भव है उलझनें और बढ़ जायें ?'

सब लोग जैसे एक स्वर में बोल उठे, 'बिलकुल सम्भव है भाभी-जी। इसके अतिरिक्त आचार्य का जीवन हमारे लिए अधिक महत्व रखता है। ऐसी हड़तालें तो इस देश में अब आये दिन हुआ ही करेंगी। अतः इनके स्वस्थ जीवन के द्वारा ही हम जन-जीवन को अधिक सुदृढ़ और उपयोगी बना सकेंगे।'

'सुना तुमने ? सबकी राय वही है जो मेरी। जब तक घाव न भर जाये तब तक बम्बई से दूर किसी स्थान में जाकर रहना ही हितकर होगा। समझे ?'

'पर भाभी, तुम यह क्यों नहीं सोचतीं कि ऐसी विषम परिस्थिति में जीवन के लोभ से मजदूरों का साथ छोड़कर चला जाना क्या उपयुक्त होगा ? यह तो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को कुएँ में ढकेलने के समान है।'

'तुम्हारा यही हठ तो बुरा है। अपनी बातों के आगे दूसरे की बातों को सुनना ही नहीं चाहते। अच्छा,' भाभीजी ने बैठे हुए व्यक्तियों की ओर देखा, 'अब आप लोग जायें। कल इसका निर्णय सबको मालूम हो जायेगा।'

लोग एक-एक दो-दो करके जाने लगे। अन्त में एक अधेड़ उम्र के कार्यकर्ता ने जाते हुए कह ही दिया, 'भाभीजी, आचार्य को कहीं बाहर भेजना अत्यन्त आवश्यक है, यदि इन्हें शीघ्र-से-शीघ्र फिर कार्य में जुटना है तो।' उसने नमस्ते किया और चला गया।

केवल आचार्य, भाभीजी और नन्दा के अतिरिक्त और कोई कमरे में नहीं रहा। कमरे में पूर्णतः सन्नाटा था। तीनों अपने विचारों में उलझे हुए थे। और सम्भवतः तीनों ही के सामने विशेष प्रकार की समस्याएँ भी थीं।

कुछ समय उपरान्त भाभीजी ने नीरवता भंग की, 'मैं समझती हूँ

तुम्हारे लिए राजापुर सबसे उपयुक्त स्थान होगा और वहाँ तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा भी ठीक से हो सकेगी।'

'क्या ?' आचार्य ने करवट ली।

'राजापुर में तुम्हारे कोई मित्र रहते हैं न ?'

'तो ?'

'तो यही कि तुम्हें जाना है।'

'सब सोच लिया है ?'

'सब सोचा हुआ है। कल रात की किसी गाड़ी से तुम्हारे जाने का प्रबन्ध होगा।' भाभीजी ने निर्णय कर दिया।

'भाभी....'

भाभीजी ने बीच में टोका, 'हमने सब विचार कर लिया है। निरोग होकर तुम अधिक सेवा कर सकोगे। समझे ! अभी बहुत उम्र पड़ी है। स्वस्थ होकर लौट आओ, फिर जी तोड़ काम करना।'

थोड़ी देर के लिए कमरे में स्तब्धता छा गई। अचानक जैसे किसी विशेष बात का ध्यान आते ही आचार्य के मुँह से निकल पड़ा, 'लेकिन अब नन्दा का क्या होगा भाभीजी ?'

'यही तो मैं भी सोच रही हूँ। इस लड़की का त्याग तुम्हारी पार्टी के लिए गर्व की बात है। जो नहीं हो सकता था उसको इसने कर दिखाया, किन्तु अब....'

'अब की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है भाभीजी। मैं आचार्य के साथ राजापुर जाऊँगी। कोई-न-कोई इनके साथ जाता ही। मैं ही चली जाऊँगी।'

'पर तुम्हारी माताजी और पिता....'

'छूटे ही समझिए। अब वहाँ जाना सम्भव नहीं हो सकेगा। वीरेश बाबू के मुँह को रोकना कठिन है।'

'लेकिन नन्दा....'

'आपकी भावनाओं को मैं समझती हूँ आचार्य, परन्तु परिस्थितियों

को आप देख ही रहे हैं। इसके विपरीत जाना क्या सम्भव है ?' शायद माता-पिता का अलगाव इस समय नन्दा को कष्ट दे रहा था।

आचार्य और भाभीजी दोनो चिन्ताओं में व्यथित होने लगे, परन्तु नन्दा ने जो कुछ कहा वह भी सही और अकाट्य था। भाभीजी ने समझाने का प्रयत्न किया, 'परन्तु यह जीवन का बड़ा बेतुका रास्ता है नन्दा। अभी तक तो कुछ गुंजाइश भी है, लेकिन इस क्षेत्र में और आगे कदम बढ़ाने पर संसार की सारी लालसाओं को तिलांजलि देनी पड़ेगी, जो अत्यधिक कष्टदायक है।'

'सो तो ठीक है भाभीजी, पर अब किया क्या जा सकता है! छुटकारा पाने की कोशिश करना भी मूर्खता है। क्योंकि सम्भव है अब उधर मुड़ने पर वह और अधिक कष्टदायक सिद्ध हो।'

भाभीजी के पास कोई उत्तर नहीं था। आचार्य भी मौन रहे। नन्दा ने आगे कहा, 'भाभीजी, मैं आचार्य के साथ कल जाऊँगी। मेरी शुश्रूषा से वह जल्द स्वास्थ्य-लाभ कर लेंगे।' वह उठकर दूसरे कमरे में चली गई।

नन्दा के चले जाने के बाद कुछ समय तक आचार्य और भाभीजी में बातें होती रहीं।

दूसरे दिन प्रत्येक कार्यकर्ता को यह जानकर हर्ष हुआ कि नन्दा और आचार्य ने बम्बई छोड़ दी।

२६

आज के उत्तर प्रदेश की सीमा पर अवस्थित बलिया जिला के अन्तर्गत एक गाँव राजापुर है। गाँव छोटा है, पर रमणीक है। पूरब की ओर छोटी-सी नदी कल-कल करती नर-नारी तथा पशु-पक्षी सबको आनन्दित किया

करती है। वर्षा-ऋतु में इसका रूप कुछ अवश्य भयंकर हो जाता है, परन्तु अभी तक खेतिहर भाइयों की कोई शिकायत नहीं रही। जाड़े और गर्मियों में इस नदी से प्राप्त सुख अकथनीय है। काली मिट्टी होने के कारण गाँव की फसल में गेहूँ-चने की अधिकता है। वैसे नदी के किनारे-किनारे धान की खेती भी बुरी नहीं होती। गाँव में हर जाति के लोग हैं। फलस्वरूप एक दूसरे की आवश्यकताएँ अदला-बदली से पूरी हो जाया करती हैं।

राजापुर गाँव में जमादार साहब का परिवार अधिक पढ़ा-लिखा है। जमादार साहब जेल-विभाग में एक साधारण सिपाही की हैसियत से भर्ती हुए थे और जब उन्होंने पेन्शन ली तब जेलर थे। परन्तु गाँव में तथा आस-पास के गाँवों में वह जमादार साहब के रूप में ही जाने-जाते हैं। उन्होंने अपनी छत्तीस वर्ष की नौकरी में संसार को भली-भाँति देखा और समझा है। उन्हें पेन्शन पाये आठ-सात साल हो चुके हैं, परन्तु किसी ने उन्हें आज तक राजनीतिक विषयों पर किसी किस्म की बातचीत करते नहीं सुना। सम्भव है उन्हें स्वतंत्रता प्रिय हो, कांग्रेस के संघर्ष भी प्रिय हों, परन्तु साथ ही वह शायद खुलकर अंग्रेजों के विरोध में कुछ कह भी नहीं सकते थे और यही कारण था कि राजनीतिक चर्चा वह कभी करते ही नहीं थे।

वैसे जमादार साहब के कई पुत्र हैं, जो विभिन्न पदों पर विभिन्न विभागों में काम करते हैं, परन्तु आपका एक लड़का जगदीश वहीं कालेज में अंग्रेजी का अध्यापक है। कालेज तहसील में है, जो राजापुर से लगभग दो मील की दूरी पर है। अतः जगदीश माता-पिता की सेवा के साथ-साथ घर-द्वार, बाग-बगीचा सभी की देख-रेख करता है जो आवश्यक और जमादार साहब के इच्छानुकूल है।

जगदीश छरहरे बदन का एक पचीस वर्षीय युवक है। दुनियादारी उसे फबती नहीं। अध्ययन से विशेष रुचि होने के कारण उसका खाली समय अधिकतर पुस्तकों के उलटने-पलटने में ही व्यतीत होता है। कभी-कभी मूड आ जाने पर वह कविताएँ या कहानियाँ भी लिख लिया करता

है, जिसे केवल स्वांतःसुखाय ही कहा जा सकता है। वह बोलता कम और सुनता अधिक है। अविवाहित होने के कारण उसे कल्पनाओं की दुनिया में अधिक रस मिलता है, जो स्वाभाविक होता है। सैर-सपाटे के लिए उसने नदी में एक छोटी-सी नाव भी डलवा रखी है, जो चाँदनी रातों में विशेष उपयोगी साबित होती है।

गाँव के पिछवाड़े, नदी के किनारे, 'खटहवा बाग' में लड़कों का अखाड़ा है। लड़कों का उस्ताद रामखेलावन है। रामखेलावन जाति का अहीर है, पर देखने-सुनने में कुछ और लगता है। वह जितना बलिष्ठ और शक्तिशाली है व्यवहार और बातचीत में उतना ही सभ्य और नम्र है। परन्तु उसकी यह नम्रता नम्र व्यक्तियों के लिए ही है। झूठे और चालबाज व्यक्तियों तथा पुलिस अधिकारियों का वह जानी दुश्मन है। यही कारण है कि गाँव के मक्कार तथा अफसरों के पिट्ठू उससे सदैव खार खाये बैठे रहते हैं। वे हमेशा उसे फाँसने की कोशिश में रहते हैं; परन्तु खुलकर कुछ करने की हिम्मत न होने के कारण अभी तक उसका बाल भी बाँका नहीं किया जा सका है। रामखेलावन के आगे-पीछे कोई नहीं है। खेती-पाती लगभग दो-तीन बीघे की है, जो उसके लिए पर्याप्त है। छुटपन में मा-बाप के मर जाने के कारण उसका विवाह भी न हो सका, परिणामस्वरूप आज दिन भी वह कुँवारा है। और अब उसे कुँवारा रहना ही अच्छा भी लगता है, यद्यपि उसकी जाति की नई-नवेलियाँ अपने कटाक्ष-बाण छोड़ने में चूकती नहीं, परन्तु बाण बिंधे तो कैसे? वह एक-एक पग जो बड़ी सतर्कता से रखता है।

एक दिन संझा को पतवा की औरत नदी से पानी लेकर चली आ रही थी। रास्ते में रामखेलावन से भेंट हो गई। पतवा-बो खड़ी हो गई।

'लाला!' उसने पुकारा।

रामखेलावन सुनी-अनसुनी करके आगे बढ़ जाना चाहता था। वह जानता था कि वह मजाक करने के लिए ही रोक रही है। पतवा-बो ने बलिया की ठेठ बोली में फिर पुकारा, 'ओ लाला! चुहुल नहीं करूँगी। केवल एक बात बतानी है, बहुत जरूरी।'

रामखेलावन को समझते हुए भी रुकना पड़ा, 'कह भौजी !' वह मुस्कराने लगा।

'काल झुनियाँ कहती रही कि रामखेलावन बेकार देह फुलाके चलता है। ओकरा अन्दर कुछ है थोड़े। खाली नकल करता है नकल।' पतवा-बो ने इस गम्भीरता से कहा जैसे सचमुच झुनियाँ ने उससे कहा ही हो।

रामखेलावन सब समझ रहा था, परन्तु उसने भी उसी गम्भीरता से उत्तर दिया, 'भौजी, झुनियाँ की बात छोड़, एक दिन तू ही हमको अजमा ले। देख, कैसा मालूम होता है। बोल, अजमाएगी ?'

पतवा-बो ने धीरे से उसके गाल पर थपकी दी, 'भाग मुँहजले। जो मुँह में आया बक गया।' और दोनो हँसते हुए चले गये।

२७

प्रातःकाल लगभग नौ बजे नन्दा सहित आचार्य इसमाइलपुर स्टेशन पर उतरे। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि राजापुर वहाँ से बारह मील है और सवारियों का साधन है इक्का या बैलगाड़ी। छह रुपये में एक इक्का तय किया गया और चटपट वे लोग राजापुर को चल पड़े। सड़क अच्छी नहीं थी, इसी लिए इक्केवान घोड़े को 'राजा, बेटा' के सम्बोधन से पुचकारता अपनी मस्ती में गुनगुनाता, बीच-बीच में टक-टक करता चल रहा था। शहर-निवासियों से वैसे भी देहात के लोग अपने को कुछ निम्न स्तर का आँकते हैं, फिर मर्द के साथ यदि स्त्री भी अपटूडेट हो तब तो कहना ही क्या ! इसलिए इक्केवान ने चाहने पर भी, इस भय से कि कहीं बाबूजी बिगड़ न जायें, आचार्य से कुछ पूछा नहीं।

कई रातें और कई दिन यात्रा में व्यतीत हुए और अब भी यात्री

यात्रा के पथ पर ही चल रहे थे, परन्तु यह नहीं समझ में आ रहा था कि नन्दा इतनी गुमसुम क्यों थी, उसके हृदय में तो आचार्य के लिए बहुत बड़ा स्थान था, वह आचार्य को अपने देवता के रूप में पूजती रही है, इतना ही नहीं उसने इसी आचार्य के लिए अपने होनेवाले पति वीरेश का भी त्याग कर दिया था। क्या इसे साधारण त्याग कहा जा सकता था, तो फिर जब उसके आराध्य देव उसे मिल गये हैं तब वह किस चिन्ता में पड़ गई है ? लम्बे सफर में शायद ही उसने आचार्य से कोई विशेष बात की हो या शायद ही किसी जानकारी के लिए उसके हृदय में किसी प्रकार का कोई कुतूहल उठा हो। हाँ, आचार्य के पूछने पर उसने 'हाँ-ना' में उत्तर अवश्य दे दिया था। यद्यपि वह स्वयं इस खिन्नता का कारण नहीं समझ पा रही थी, परन्तु करे क्या ? प्रयत्न करने पर भी उस उदासी से उसे छुटकारा नहीं मिल रहा था। वह यह भी समझती और देखती थी कि उसके उस भाव-परिवर्तन से आचार्य की मानसिक उलझनें अधिक बढ़ गई हैं, परन्तु तबीयत को कौन समझाये ? उसका तो प्रत्येक कार्य निराला ही होता है।

दिन के एक बज रहे थे। आचार्य ने पूछा, 'भाई इक्केवाले, अभी राजापुर कितनी दूर होगा ?'

'अब आ गये मालिक ! यही कोई एक-डेढ़ कोस है।'

आचार्य चुप हो गये। थोड़ी देर बाद जरा पैर बदलते हुए उन्होंने नन्दा की ओर देखा, 'इसके पहले तुमने कभी गाँव देखे थे नन्दा ?' उनके पूछने में एक अजीब मिठास थी, जिसने नन्दा के मर्म पर चोट की। उसे दुःख हुआ अपनी ओछी तबीयत पर।

वह मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई बोली, 'गाँव तो देखे थे, लेकिन कभी रहने का अवसर नहीं मिला है। अब रहकर भी देख लूँगी। गाँवों की तारीफ तो बड़ी सुनी है। आप यहाँ और भी कभी आये हैं ?'

'ऊँहूँ। यह पहला अवसर है।'

'पहला अवसर है औ....र जिनके यहाँ....'

'वह मेरे साथ का पढ़ा हुआ है। तुम उससे मिलकर खुश होगी।'

'लेकिन....'

'चिन्ता करने की जरूरत नहीं।' आचार्य नन्दा के भाव को समझ गये थे। 'मैं तुम्हें सविस्तार बतलाऊँगा। वह लड़का विश्वासपात्र है। बस इतना ही समझ लो।'

'वह करते क्या हैं?'

'वहीं एक कालेज में पढ़ाता है।'

नन्दा ने और कुछ नहीं पूछा। फिर थोड़ी देर के लिए 'वाह बेटा, वाह सुगना, टक-टक-टक। उड़ चल फुरगुद्दी की चाल! टक-टक-टक!' की आवाज दोपहरी के सन्नाटे में गूँजने लगी। अचानक कुछ दूर आगे चलकर इक्केवान ने घोड़े को सड़क से उतारकर खेत में पड़ी हुई लीख पर मोड़ दिया।

'बाबूजी, चलना किसके यहाँ होगा?'

'क्या गाँव आ गया?'

'सामने दिखाई तो पड़ रहा है।' उसने संकेत द्वारा उँगली से बताया।

'जगदीश बाबू के यहाँ चलना है।'

'जगदीश बाबू!' उसने मुड़कर आचार्य की ओर देखा, परन्तु तत्काल कुछ स्मरण आते ही बोला उठा, 'अच्छा, अच्छा, जमादार साहब के घर। समझ गये।'

'जमादार साहब या जेलर साहब?' आचार्य को कुछ शंका हुई।

'सब लोग उन्हें जमादार साहब ही कहते हैं बाबूजी, जेलर साहब तो बाद में हुए थे न?'

आचार्य और नन्दा मुस्करा रहे थे।

जैसे शहरों में किसी विशेष नेता के आगमन पर कुछ समय के लिए चहल-पहल हो जाती है ठीक वैसी ही हलचल देहातों में किसी के घर सगे-सम्बन्धी के आने पर भी देखी जाती है। गाँव के एक कोने से दूसरे कोने तक कितनी तेजी से खबर पहुँचती है इसका अनुमान लगाना कठिन ही नहीं दुःसाध्य कहा जाये तो अनुपयुक्त न होगा। अभी आचार्य का

इक्का बाग में आकर रुका ही था कि गाँव के सारे लड़कों ने आकर घेर लिया। सामने 'बुढ़वा कुआँ' पर स्त्रियों का जमाव एकत्रित होकर आगन्तुकों के विषय में अनुमान लगाने लगा। थोड़ी देर के लिए एक विचित्र हंगामा खड़ा हो गया।

आचार्य ने इक्केवान से जगदीश को खबर करने के लिए कहा। जगदीश को सूचना मिलते ही दौड़ा आया और आकर आचार्य के गले से लिपट गया। आचार्य ने पीठ थपथपाई, 'पहले से मोटे हो गये हो।'

जगदीश ने आचार्य को नीचे से ऊपर तक देखा, 'क्या बीमार हो?'

'हाँ! चलो बतलायेंगे।'

'तब तुम इक्के पर बैठकर चलो। हमारे मन्दिर से घूमकर रास्ता बना है।'

नन्दा जब दरवाजे पर पहुँची तो उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि इस घनघोर देहात में शहर की सुन्दरता कैसी? घर के सामने एक अच्छा-सा लान है, जिसके किनारे-किनारे क्यारियों में नाना प्रकार के फूल लगे हैं। लान के बीच में एक अशोक का पेड़ है, जिसकी छाया में कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। घर और लान के बीच में एक पुख्ता चौड़ा-सा ईंटों का खम्भा बना है जिस पर बैठा मोरों का जोड़ा अपने सुन्दर पंखों को फैलाकर स्वागत कर रहा है। नन्दा को वहाँ के वातावरण ने बिलकुल ठग लिया।

आचार्य को सहारा देकर जगदीश ने उतारा और इक्केवाले को विदा किया। बैठक में पलंग पर लेटते हुए आचार्य ने पूछा, 'तुम्हारे बाबूजी कहाँ हैं?

'शायद मन्दिर पर हों। क्यों?'

'यहाँ और कौन-कौन हैं?'

'केवल चाची हैं। माई आजकल बड़े भइया के साथ लखनऊ में हैं।'

'तुम अपनी कुर्सी और नजदीक खींच लो।'

जगदीश सटकर बैठ गया। आचार्य ने एक-एक करके सारी घटनाएँ आरम्भ से आज तक की बतलाना आरम्भ कीं। जगदीश अवाक् बैठा

सुनता रहा। उसे प्रसन्नता थी अपने दोस्त के इन कार्यों पर। नन्दा बाहर फूल-पत्तियों में उलझने का झूठा प्रयास कर रही थी। इस समय उसने आचार्य और जगदीश के बीच में जाना उचित नहीं समझा। आचार्य ने जैसे बातों के सिलसिले का अन्त करते हुए कहा, 'अब रहा प्रश्न नन्दा का कि उसे किस रूप में यहाँ रखा जाये ?'

'यही मैं भी सोच रहा हूँ। मैं....'

'एक चीज मैं कहना भूल ही गया था। तुम्हें तो मेरा गोपाल नाम ही स्मरण होगा।'

'बिलकुल।'

'तो ठीक है। दूसरी विशेष बात यह है कि मुझे टी० बी० का रोगी घोषित कर दो। यह दूसरों की आँखों पर पर्दा डालने के लिए पर्याप्त होगा।'

जगदीश हँसने लगा, 'गुरु हो न। लेकिन नन्दा देवी के लिए क्या होगा ?'

आचार्य सोचने लगे। जगदीश ने विचारों की शृंखला तोड़ी, 'देखो यह गाँव है। यहाँ बाल की खाल निकालते देर नहीं लगती। विशेषकर स्त्रियों के स्वभाव को तुम जानते ही हो। नन्दा देवी के यहाँ रहने से तुम्हारा भेद खुल सकता है। समझ रहे हो न ?'

'लेकिन जगदीश, नन्दा को लौटाया भी तो नहीं जा सकता। मैंने सब बातें तुम्हें बतला ही दी हैं।'

'तो फिर ?'

'तो फिर क्या। कोई-न-कोई रास्ता निकालना ही होगा।'

जगदीश सोचने लगा। कुछ समय उपरान्त वह बोला, 'एक रास्ता है। अगर नन्दा देवी कर सकें, तो।'

'क्या ?'

'उनको यहाँ पर तुम्हारी स्त्री के रूप में रहना होगा और उस स्वाँग को वास्तविक रूप देने के लिए बाहरी आडम्बर भी करना होगा।'

'बाहरी आडम्बर से तुम्हारा....'

'बाहरी आडम्बर से मेरा मतलब है हाव-भाव के साथ-साथ सिन्दूर वगैरह लगाना। यह देहात है। मीन-मेख निकलते देर नहीं लगती।'

'इसका होना असम्भव है जगदीश, और न मैं इसके लिए नन्दा से कहूँगा ही।' आचार्य ने साफ इनकार कर दिया।

'लेकिन इससे बिगड़ता क्या है ? थोड़े दिनों की तो बात है। तुम कहकर तो देखो। वह तैयार हो जायेंगी।'

'ना। मैं यह नहीं कह सकता....'

'चाहे तुम्हारी असलियत दूसरों को मालूम हो जाये ?'

'हो जाने दो। फाँसी ही तो होगी। वह मुझे बर्दाश्त है। मैं वीरेश के साथ दगा नहीं करूँगा।'

'झक्की हो न, इसलिए समझाना भी बेकार है। इसमें दगा क्या करना है ? तुम अपनी भाभी को, जैसा अभी तुमने बतलाया है, बम्बई अपनी बीवी बनाकर नहीं ले गये थे ?'

'वह बात और थी और यह बात और है। तुम समझते नहीं जगदीश, मैं नन्दा से किसी भी दशा में यह नहीं कह सकता।'

जगदीश सोचने लगा। 'खैर,' वह उठता हुआ बोला, 'अब तुम लोगों के नाश्ता-पानी का प्रबन्ध करूँ। बाद में कुछ सोचा जायेगा।'

वह जाकर नन्दा देवी को बुला लाया।

२८

बाबू हरिनारायण राजापुर गाँव के लम्बरदार हैं, साथ ही कुर्गजवार के चोरों और बदमाशों के मुखिया भी। थाना-चौकी उनकी है और वह थाना-चौकी के हैं। दारोगाजी से मिलीभगत है। चोर-चोर मौसेरे भाई

तो होंगे ही। दोनों को एक-दूसरे से लाभ है; अतः गाँव में उन्होंने बड़ी धाँधागरदी मचा रखी है। उनके इशारे पर पलक मारते सब-कुछ हो सकता है। वह किसी को दिन-दहाड़े पिटवा सकते हैं तो किसी पानीदार की खड़ी फसल रात में उखड़वा भी सकते हैं। इतना ही नहीं, उनके अन्दर इससे भी आगे और कुछ करने की क्षमता है। वह चोरी और डकैती भी करवा सकते हैं। उनके साथ 'सइयाँ भये कोतवाल' वाली मसल है न। कहने का तात्पर्य यह कि वह अँग्रेजी सरकार की दुहाई मनाकर अपने ही भाइयों का गला घोंटते हैं और धन एकत्रित करने में सदैव उत्सुक रहते हैं। वह देश के नेताओं को गाली देते हैं और खुल्लमखुल्ला कांग्रेस का विरोध करते हैं।

हरिनारायण पैंतालिस वर्ष के हृष्ट-पुष्ट मनुष्य हैं। पढ़े-लिखे भी हैं। सुना जाता है, वह पहले नायब तहसीलदार थे। '४२ की क्रान्ति में उन्होंने अवसर से लाभ उठाया और लूट के माल से घर भर लिया। कुछ दिनों बाद सम्भवतः उन्होंने इस्तीफा दे दिया। तभी से वह गाँव में रहने लगे थे। उनके पिता का देहान्त हो चुका था, अतः जमींदारी का सारा कार्य अब उन्हीं को देखना पड़ता था। हर फन में उस्ताद होने के कारण उन्होंने गाँव में बड़ा आतंक फैला रखा था।

किसी भी गाँव में बिना दलाल के पुलिस कुछ कर नहीं सकती। इसलिए पुलिसवाले हर गाँव में अपने कुछ दलाल रखते हैं, जिनके द्वारा उन्हें हर प्रकार की सूचनाएँ तथा सहायता मिलती रहती है। राजापुर गाँव में और भी दलाल हैं, परन्तु दलालों के सरदार बाबू हरिनारायण ही हैं।

दरवाजे पर कुएँ के समीप खाट पर बैठे हुए बाबू हरिनारायण हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे कि बड़े दारोगाजी के आगमन की सूचना मिली। उन्होंने झट से उठकर दारोगाजी को हाथों-हाथ लिया और बड़े आवभगत से कुर्सी मँगवाकर बिठलाया। तदुपरान्त पान-पत्ते का प्रबन्ध होने लगा। हरिनारायण ने मुस्कराते हुए पूछा, 'आज हुजूर को इधर कैसे कष्ट करना पड़ा?'

'एक इन्क्वारी (जाँच) में सिलाइच जा रहे थे, सोचा आपसे भी मिलते चलें।'

हरिनारायण गद्गद स्वर में बोले, 'इन्हीं मेहरबानियों पर तो अब भी बुढ़ापे में जवानी का मजा ले रहा हूँ और मौका आने पर मुश्किल से मुश्किल काम करने के लिए तैयार भी रहता हूँ, नहीं तो भला आप ही सोचें, आज के जमाने में चालीस-वर्ष की उम्र क्या थोड़ी होती है?'

दारोगाजी मुस्कराने लगे, 'उम्र चाहे आपकी जो हो लेकिन मैं समझता हूँ अभी आप हम नौजवानों से लाख दर्जे अच्छे हैं।'

नौकर पान लेकर आया। हरिनारायण ने उसके हाथ से तश्तरी ले ली और बड़े जोरों से डाँटा, 'अरे, पहले शर्बत वगैरह पिलायेगा या पान ही खिलाने चला है। पागल कहीं का। जा, जल्दी।' नौकर लौटा। 'अरे देख,' नौकर रुक गया, 'उधर जुठना लेहना काट रहा होगा, उसे भेज दे।' नौकर चला गया।

जुठना हरीजी का खास नौकर है। वह आया। दारोगाजी को सलाम करके मालिक के समीप खड़ा हो गया।

'देखो, बिदेसिया घर पर है। अगर मिल जाये तो साथ लेते आना।' फिर उन्होंने दारोगाजी की ओर देखा, 'क्या बतायें हुजूर, इन कांग्रेसियों ने तो लोगों के दिमाग को खराब कर दिया है। इतना सब-कुछ होने पर भी आप देख रहे हैं, गाँव में कितनी बौखलाहट है! सब साले अपने को ही गाँव का मालिक समझते हैं। कहते हैं सब का अधिकार बराबर है।'

'घबड़ाइए नहीं! एक-एक करके सब हरामजादों को ठीक करूँगा। मैं जिसका नमक खाता हूँ उसे धोखा नहीं देता। अँग्रेज चाहे अच्छे हों या बुरे, इससे हमें क्या मतलब। हम तो सरकार के खादिम हैं। इसके लिए अगर जान की जोखिम भी उठानी पड़े तो उठा लेंगे।'

हरिनारायण ने बड़ी गम्भीरता से सिर हिलाया, 'हुजूर सही फर्माते हैं। जिसकी रोटी खाते हैं उसका हुक्म तो बजायेंगे ही। दुनिया में फर्ज भी तो कोई चीज है और फिर मैं कहता हूँ कि अंग्रेजों में बुराई क्या है?

वे जिस ईमानदारी और लगन से हुकूमत कर रहे हैं वह कांग्रेसी क्या खाकर करेंगे ? कहिए बेजा तो नहीं कह रहा ?'

'हरिनारायण साहब, अभी कोई उम्मीद तो नजर नहीं आती, फिर भी अगर किसी तरह अंग्रेज चले गये और हिन्दुस्तानियों की हुकूमत बनी तो देखिएगा सँभाले नहीं सँभलेगी। यह अंग्रेजों का ही दम है कि इतने बड़े देश पर इस खूबी के साथ हुकूमत कर रहे हैं।'

'हुजूर बिलकुल ठीक कहते हैं। पहले स्वराज्य तो मिले। गाँधीजी अंग्रेजों से तो बाद में निबटेंगे, पहले जिन्ना साहब से तो फैसला कर लें।'

दारोगाजी ठट्ठा मारकर हँसने लगे, 'देखिए अभी क्या-क्या गुल खिलता है। खैर, आजकल रामखेलावन चौधरी के क्या हाल हैं ?'

हरिनारायण ने इधर-उधर देखकर कुछ धीमे स्वर में कहा, 'आपको तो सब-कुछ मालूम है, नाकोंदम कर रखा है। हुजूर, इसका कुछ इलाज होना ही चाहिए, नहीं आगे चलकर बड़ा दुःखदायी साबित होगा। हम-जैसे लोगों को छोड़कर इस समय पूरा गाँव उसकी राय में है।'

'अवसर आने दीजिए। ऐंठन बहुत जल्द ठीक करनेवाला हूँ। मौका निकालकर किसी दिन थाने आइए तो बातें होंगी।'

नौकर शर्बत लेकर आ गया। थानेदार साहब ने शर्बत पिया। इसी बीच जुठना भी बिदेसिया को लिवा लाया। लम्बरदार ने छूटते ही कहा, 'क्यों बे सुअर के बच्चे, गाँव-भर का मालिक हो गया है क्या ? जो तबीयत में आती है वही कर बैठता है !'

बिदेसिया हकबका गया। कुछ समझ नहीं पाया। बोला, 'लेकिन बाबू....'

'अबे बाबू के बच्चे, कल पच्छिम के पोखरे में किसके हुक्म से मछली मार रहा था ?'

'पर मैंने पैठ के थोड़े ही मारी थी, सिर्फ बंसी लगायी थी....'

'बंसी क्यों लगायी ? क्या वह तेरे बाप की रियासत है ?' जैसे पहले ही से हरिनारायण ने अपने मन में कुछ निश्चय कर रखा हो।

बिदेसिया था तो दुसाध, पर उसमें आत्म-सम्मान का ज्ञान था। उसे सब-कुछ सहन था, किन्तु बाप के लिए वह शब्द नहीं सुन सकता था। उसका मन तिलमिला उठा। फिर भी उसने बड़े संयत रूप से कहा, 'बाबू, बाप न बखानें। अगर गलती हो....'

बिदेसिया इतना ही कह पाया था कि हरिनारायण ने थानेदार साहब की छड़ी उठा ली, 'अबे चोरी भी करे और मुँह भी लड़ावे।' उन्होंने उस पर कसकस के चार-छह हाथ झाड़ दिये। दिल का गुबार शान्त हो गया। थानेदार साहब ने डाँट बतलायी और उसे गाली देते हुए भाग जाने को कहा।

हरिनारायण ने बदला चुकाया। बिदेसिया रामखेलावन का आदमी जो था।

२६

जगदीश ने नन्दा को अन्दर ले जाकर चाची से बतलाया, 'जो हमारे मित्र आये हैं न, उनकी यह पत्नी हैं। आपसे मिलना चाहती थीं।'

जगदीश ने पहाड़ ढा दिया। नन्दा ने नमस्ते तो कर लिया, पर उसका मुँह एकबारगी फक पड़ गया। शरीर में झुनझुनी दौड़ गई। रहस्य समझ में नहीं आ रहा था। वह बार-बार जगदीश की ओर देखती और आँखें नीची कर लेती। जगदीश अपनी चाची को ओर देख रहा था।

चाची ने सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया, 'सदा सुहागवती बनी रहो बेटी। दुःख-सुख तो ईश्वर की लीला है। चिन्ता नहीं करना चाहिए। जब दुःख दिया है तो सुख भी मिलेगा। क्या उनकी तबीयत....'

'उनको टी० बी० हो गई है चाची।' जगदीश ने नन्दा के कहने के

पहले ही बात साफ कर दी। 'डाक्टरों ने देहात में रहने की सलाह दी है। यहाँ रहने से शायद कुछ दिनों में ठीक हो जायें।'

'अरे ठीक तो हो ही जायेंगे। डाक्टरों को कुछ आता-जाता भी है? जिसको देखो उसी को टी० बी० का रोगी बतलाकर पैसा ऐंठने का रास्ता निकाल रखा है। तुम घबड़ाना नहीं बेटी, यहाँ सब ठीक हो जायेगा।'

नन्दा गुमसुम खड़ी सोच रही थी कि यह आदमी ऊपर से देखने में जितना सीधा है अन्दर से उतना ही चतुर।

'अच्छा, चलिए पहले जलपान हो जाये। गोपाल प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आपको अभी नहाना-वहाना भी तो होगा?'

नन्दा को बैठक में आचार्य के पास बिठलाकर जगदीश चाय लाने के बहाने उठता हुआ आचार्य को संकेतों में सब बतलाता गया। नन्दा सिर लटकाये मौन बैठी रही। उसका हृदय इस समय आनन्द से ओत-प्रोत हो रहा था; परन्तु मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। आचार्य ने करवट ली। वह कुछ कहने ही वाले थे, किन्तु नन्दा के चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही शब्द मुँह के भीतर रुक गये। वह दो-चार क्षण एकटक उसे निहारते रहे, फिर करवट ले ली। उनके मस्तिष्क में बहुत-सी घटनाएँ बिजली की भाँति कौंध गईं। नन्दा द्वारा माता-पिता का त्याग, घर-द्वार का त्याग और इनसे भी अधिक अपने होनेवाले पति का त्याग—आचार्य के हृदय को बेधने लगा। भूत साकार हो उठा, वर्तमान तो प्रत्यक्ष था ही। उनकी पीड़ा बढ़ गई। उन्होंने अनुभव किया कि उनका नन्दा के प्रति आज तक का व्यवहार बहुत ही निन्दनीय और असहनीय था। उन्हें अपनी कमजोरी पर क्रोध आया। वे मन में बार-बार सोचते और पश्चात्ताप करते रहे कि उन्होंने उसके प्रति ऐसा बर्ताव क्यों किया? क्या वह इस बात के अधिकारी नहीं कि जो उनसे प्रेम करे उसको वह भी अपना प्यार दे सकें? अवश्य अधिकारी हैं। वह प्रेम कर सकते हैं और उन्हें प्रत्येक दशा में नन्दा से प्रेम करना चाहिए। आचार्य को सन्तोष हुआ, परन्तु तत्काल

बुद्धि ने तर्क भी किया। क्या वह अपने मित्र को धोखा देंगे? उसकी पत्नी को अपनी पत्नी बनाकर वह संसार को यह कहने का अवसर देंगे कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व का अनुचित लाभ उठाया। परन्तु तुरन्त इसका उत्तर भी उनके पास आया—नन्दा स्वयं उनकी ओर आकर्षित हुई थी और उसने अपने आकर्षण को छुपाया नहीं, वरन् तन-मन-धन से डंके की चोट पर प्रमाणित भी किया और अब भी कर रही है। बुद्धि शान्त हो गई।

आचार्य ने दृष्टि घुमायी। नन्दा की आँखों से आँसू बह रहे थे। उन्होंने हाथ बढ़ाकर नन्दा का हाथ पकड़ लिया, 'मैंने तुम्हारी बड़ी उपेक्षा की है नन्दा। इस त्रुटि को सम्भवतः मैं जीवनपर्यन्त नहीं भूल सकूँगा। अगर अब क्षमा कर सको तो मेरे लिए यह भाग्य की वस्तु होगी।'

नन्दा की सिसकियाँ बँध गईं, धीरज का बाँध टूट गया था।

आगे कुछ कहने में आचार्य असमर्थ हो गये। थोड़ी देर उपरान्त जब नन्दा कुछ स्थिर हुई तो उन्होंने बात चलायी, 'जगदीश ने हम लोगों के बचाव के हेतु कुछ प्रस्ताव रखे थे। तुम्हें मालूम हुए?'

नन्दा ने सिर हिलाया।

'मुझे अच्छा नहीं लग रहा था, लेकिन विवशताएँ सभी कुछ करा देती हैं। तुम तो जानती ही हो?'

नन्दा ने कोई जवाब नहीं दिया। यह भी कोई जवाब देनेवाली बात थी? परन्तु एक चीज वह पूछे बिना न रह सकी, 'क्या टी० बी० के स्थान पर फोड़े का बहाना उपयुक्त न होता?' वह धीरे से बोली।

'होता, लेकिन उसमें शक की गुंजाइश थी और शक होने पर गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता। इसलिए टी० बी० की आड़ लेनी पड़ी।'

अन्दर से किसी के आने की आहट मिली। दोनो सतर्क हो गये। जगदीश ट्रे में चाय ले आया। आचार्य ने जगदीश की ओर देखते हुए कहा, 'शायद चाय तुम्हीं ने बनायी है?'

'और कौन बनाता? चाची से बन नहीं सकती और भोला बाबूजी के साथ मन्दिर पर है।'

'बेकार परेशान हुए ! चाय कोई जरूरी तो थी नहीं।'

'आज पी लो। थके-थकाये आये हो। कल से मैं स्वयं नहीं पूछूँगा। दूध के आगे चाय पीना मूर्खता ही तो है।'

नन्दा चाय बनाने लगी।

सन्ध्या समय जगदीश के बाबूजी अर्थात् अस्सी वर्षीय जमादार साहब से आचार्य की भेंट हुई। बड़ी-बड़ी सफेद मूछों पर सुन्दर-सी नाक चेहरे पर एक विशेष प्रकार की आभा उत्पन्न कर रही थी, जो बरबस किसी भी अपरिचित की सहानुभूति अपनी ओर खींच लेती थी। आचार्य जमादार साहब से बड़े प्रभावित हुए। जमादार साहब ने सामनेवाले पलंग पर बैठते हुए भोला से कुछ लाने के लिए संकेत किया। भोला एक शीशे की छोटी-सी गिलास में भर लाया। जमादार साहब पी गये। फिर पूछा, 'इसे आप बुरा तो नहीं मानते ?'

'जी नहीं। बुरा मानने की क्या....'

'आदत कहिए या एक तरह की गिजा कहिए। न मिलने पर रात-भर नींद नहीं आती। वैसे आपको सुनकर ताज्जुब होगा कि मांस-मछली मैंने सब छोड़ दिया है, लेकिन इसे नहीं छोड़ पाता। एक-दो बार कोशिश जरूर की थी, लेकिन उसमें कामयाबी न मिल सकी।' उन्होंने भोला की ओर फिर गिलास बढ़ाया। 'मगर मैं शाम के पहले पीता भी नहीं हूँ। पूजा-पाठ से निवृत्त होकर अन्दर अपने कमरे में बैठकर भगवान का भजन करता हूँ और पीता हूँ। न ऊधो का लेना न माधो का देना। यहाँ मैं कभी नहीं बैठता।' भोला गिलास भर लाया था। वह पी गये। 'यहाँ दस तरह के लोग आते हैं।' उन्होंने आगे कहा, 'कोई किसी की शिकायत करता है तो कोई किसी की। दूसरों की भलाई सोचने का तो युग ही चला गया। फिर देहातों की हालत कितनी खराब हो गई है, क्या बताया जाये ? आपस में बड़ी जलन है। मेरे विचार से अब शहर इन देहातों से कहीं अच्छे हैं, पर क्या किया जाये ? बाप-दादों की ड्योढ़ी छोड़े भी तो नहीं बनती।'

'जी हाँ, वैमनस्यता दिन-प्रति दिन बढ़ती जा रही है।'

'वैमनस्यता की बात कहते हैं ? मैंने छत्तीस वर्ष जेल की नौकरी की है। इस समय मेरी उम्र पचहत्तर या अस्सी की होगी, लेकिन जैसा जमाना इस समय देखने को मिल रहा है वैसा कभी नहीं देखा था। आप सच मानिए गोपाल बाबू, एक वह समय था जब देहातों का जीवन स्वर्ग के समान था। मेरे इसी गाँव में जो एकता और प्रेम था उसे क्या बतलाऊँ ? पूरा गाँव एक परिवार-जैसा था। एक-दूसरे के दुःख में जान तक देने को तैयार रहते थे। यद्यपि मार-पीट, और दंगे-फसाद सभी कुछ हुआ करते थे, परन्तु इससे आपस में वैमनस्यता की भावना नहीं उत्पन्न होती थी। काका-काकी और चाचा-चाची के प्रेम में कोई अन्तर नहीं आता था। मगर आज क्या हालत है, आप खुद देख रहे हैं। मँहगाई के कारण आपसी फूट और भी बढ़ गई है। दूसरे, पश्चिमी सभ्यता का भी बुरा असर पड़ रहा है।'

'खैर,' वह हुक्का पीते हुए बोले, 'यह दुनिया का चक्कर है। ऐसे ही चला करता है। जो हो चुका है वह भी उसी की मर्जी थी और जो हो रहा है वह भी उसी की मर्जी है और जो होगा वह भी उसी की मर्जी होगी। मनुष्य का धर्म है अपने कर्त्तव्य को निभाना। कर्त्तव्य-विमुख जीवन बितानेवाला मनुष्य संसार में जीवित रहने का अधिकारी नहीं।' और उन्होंने भोला की ओर गिलास बढ़ा दिया।

बाहर महाबीरलाल की आवाज सुनाई दी, 'जमादार साहब ! ओ जमादार साहब !'

'आइए, आइए नाजिरजी, आइए !' महाबीरलाल भी पेन्शन पाते थे। डिप्टी साहब के पेशकार थे, किन्तु नाजिरजी ही कहकर पुकारे जाते थे। जमादार साहब के मकान के आगे दाहिनी ओर उनका ईंटों का पक्का मकान था।

नाजिरजी के पूछने के पहले ही जगदीश ने आचार्य का परिचय दिया। इसी बीच बाबू जगदमसहाय की लड़खड़ाती आवाज सुनाई पड़ी

और वह लड़खड़ाते पैर आ पहुँचे। जगदीश ने पकड़कर कुर्सी पर बिठलाया। पर वह बैठते ही जगदीश पर बिगड़ पड़े, 'चचा साहब,' उनका सम्बोधन जमादार साहब को था। जगदमसहाय जगदीश के बड़े चचेरे भाई लगते थे और बगल के मकान में रहते थे। कचहरी में मुहर्रिर थे। शराब पीने की बुरी लत थी। रोज की आमदनी का आधा भाग नित्य शराब पर व्यय करना उनके लिए आवश्यक होता है। 'मास्टर समझते हैं कि मैंने बहुत पी ली है। मुझे पकड़कर बिठला रहे हैं, जैसे मैं गिर पड़ूँगा।' उन्होंने जगदीश को घूरा।

नाजिरजी ने मजाक किया, 'गिरना तो दूर, अगर मास्टर ने पकड़ा न होता तो नाक-दाँत सब टूट गये होते। आवाज तो मुँह से साफ निकलती नहीं और कहते हैं कि होश में हैं।'

सब लोग हँसने लगे।

'पहले तुम अपनी सोचो, बाद में हमारी चिन्ता करना। उस दिन की भूल गये जिस दिन खाँवाँ में औंधे मुँह पड़े हुए थे? बड़े पीनेवाले बनते हो।'

सब लोग फिर हँसने लगे।

'अच्छा, कोई नई बात हो तो बताओ,' नाजिरजी ने सिलसिले को बदलना चाहा, 'यह तो रोज का काम है। कचहरी का कोई नया समाचार है?'

जगदमसहाय कुछ कहने ही वाले थे कि रामखेलावन आ पहुँचा। उसके साथ रामधारी अहीर भी थे। ये लोग सामने बिछी चौकी पर बैठ गये। अभी देहात में छोटी जाति के व्यक्तियों को खाट पर बैठने का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ है। 'क्यों रामखेलावन?' जगदमसहाय दूसरे भाव में आ गये थे, 'आज कुछ सुना? बिदेसिया का आज कचूमर निकल गया। बहुत मारा हरिया ने।'

'बहुत क्या मारा, दो-चार छड़ी लगायी थी। उसकी गलती भी तो थी। सुना उसने रात में जाल डालकर पच्छिम के पोखरे में मछली मारी थी।'

नाजिरजी को सब मालूम था, परन्तु वह बतलाना नहीं चाहते थे।

'सुना है। देखा तो नहीं ?' बाबू जगदमसहाय तैश में आ गये।

'नहीं।'

'तब कैसे कह दिया कि उसने गलती की है। और अगर थोड़ी देर के लिए मान लिया जाये उसने मछली मारी भी तो हरी को मारने का क्या अधिकार ? वह किसी को मारनेवाले कौन होते हैं ?'

'होते क्यों नहीं भइया, गाँव के नम्बरदार जो ठहरे। उधर पुलिस से मिलीभगत है, जो करें वही थोड़ा है।' रामखेलावन के कहने में व्यथा थी !

जगदमसहाय मुस्कराये। कभी तुम्हारी भी बारी आयेगी बच्चू !' घबड़ाओ नहीं ! वह तुमसे बदला जरूर निकालेगा। उसका कोई भी कुछ नहीं कर पायेगा।'

'क्या बहुत मारा है जगदम ?' जमादार साहब ने पूछा।

'बहुत मारा है चाचा।' जगदमसहाय के बोलने के पहले ही राम-खेलावन बोल पड़ा, 'दोपहरिया में मेरे पास आया था। सारा बदन फूल गया है। अब देखा नहीं जाता। आप ही सोचिए, रोज तो मजदूरी करके बच्चों का पेट पालता है। खेती-पाती कुछ है नहीं। अब दो-चार दिन उसके बच्चे भूखे सोयेंगे न ?'

'खैर, एक-दो दिन में ठीक हो जायेगा। पर यह काम बुरा है।' रामधारी चुप्पों का सरदार है और चुप्पे कितने चतुर होते हैं, इसे बताने की आवश्यकता नहीं।

'काम बुरा नहीं, बहुत बुरा है काका ! इसका परिणाम इससे भी बुरा होगा। सभापति न्याय के लिए बने है, मनमानी करने के लिए नहीं। सहने की भी एक सीमा होती है।' रामखेलावन उबल रहा था।

'लेकिन तुम करोगे क्या रामखेलावन ? हरी के हाथ में शक्ति है। उसके पीछे सारी सरकार है। अकेले टिपिर-टिपिर करने से तुम्हारा ही नुकसान है।' नाजिरजी रामखेलावन को पुट पर रख रहे थे।

'कोई अन्धेर है ? कहीं तो सुनवाई होगी ?'

नाजिरजी बड़े अनोखे ढंग से मुँह बनाते हुए मुस्कराये, 'अरे पागल, यदि सुनवाई होती तो रोना काहे का था। जो धन्धा करते हो वही करो। इन पचड़ों में पड़ने से कोई फायदा नहीं। बड़ों से बैर बेसाना अच्छा नहीं होता।' नाजिरजी रामखेलावन से कुछ उगलवाना चाह रहे थे।

जमादार साहब नाजिरजी को बहुत वर्षों से जानते चले आ रहे थे। उन्होंने रामखेलावन के कुछ कहने के पहले ही बात के क्रम को बदल दिया, 'रामखेलावन, कल दिन में आना तो बातचीत होगी। सोच-समझकर काम करना अच्छा होता है। कोई-न-कोई रास्ता अब निकाला ही जायेगा।' फिर उन्होंने बिना अवसर दिये ही जगदीश से कहा, 'मास्टर, भोजन का प्रबन्ध करो। सफर में यों ही आदमी थक जाता है, फिर यह तो रोगी हैं।'

इतनी देर बाद बाबू जगदमसहाय को भान हुआ कि बैठक में कोई दूसरा व्यक्ति भी बैठा हुआ है। उन्होंने जगदीश की ओर देखा, 'आप की तारीफ ?'

'मेरे मित्र हैं। डाक्टरों ने कुछ दिनों के लिए देहात में रहने की सलाह दी है।'

'अच्छा, अच्छा। मैं समझ गया। इनके लिए चचा साहब, ताड़ी बड़ी मुफीद होगी। आपकी क्या राय है ?'

'ताड़ी और शराब के अलावा तीसरी चीज भी तुम्हें मालूम है ? उठो चलो। कल जब दिमाग ठीक रहे तो सलाह देना।' नाजिरजी उठ खड़े हुए।

'जाओ मर्दे आदमी, तुम तो अपनी ही तरह सबको समझते हो। यहाँ तो बोतल-भर और पी लें तब भी इसी प्रकार होश में बात करेंगे। कोई भाँप नहीं सकता।'

'क्या कहने हैं ? इसका प्रमाण आप प्रत्यक्ष दे रहे हैं। आइए चलिए।'

सबके जाने के बाद बाबू जगदमसहाय ने उठते हुए धीरे से कहा, 'महाबीर और रमधरिया दोनो रँगे सियार हैं। हर जगह का भेद लिया करते हैं।'

जमादार साहब मुस्कराते रहे।

३०

रात आधी से अधिक जा चुकी थी। रघुनाथराव चिन्ताग्रस्त कमरे में टहल रहे थे। नन्दा अभी तक घर नहीं आई थी। उन्होंने पास-पड़ोस पुछवा लिया था। नौकरों को दौड़ाकर जहाँ वह आया-जाया करती थी, वहाँ भी पता करा लिया था। परन्तु कहीं वह हो तब तो मिले। फिर गई कहाँ? बड़ी विचित्र बात थी। रघुनाथराव कुछ सोच नहीं पा रहे थे। फिर भी एकमात्र सन्तान की ममता हृदय को ऐंठे दे रही थी।

रास्ता देखते सवेरा हो गया, पर नन्दा नहीं लौटी। वह अपने को रोकने में अब असमर्थ थे। उन्होंने वीरेश के पास नौकर दौड़ाया। वीरेश आया।

'नन्दा का कोई पता है?' रघुनाथराव का पहला प्रश्न था।

'क्यों?'

'कल रात से वह घर नहीं आई।'

'आचार्य की लाश....'

'मैं जब पहुँचा तब वहाँ कुछ नहीं था।'

'कुछ नहीं था!' वीरेश ने बड़े आश्चर्य से रघुनाथराव की ओर देखा।

'नहीं।'

वीरेश कुछ सोचने लगा।

'क्या सोच रहे हो?'

'कुछ नहीं ।' वीरेश कुछ गम्भीर हो गया था । 'नन्दा देवी अब आपके पास नहीं आ सकेंगी ।'

'नहीं आ सकेंगी ! क्या मतलब ?'

'शायद आचार्य हमारी गोली से मरे नहीं ।' वीरेश सोचने लगा । उसका अन्तर बिंध रहा था ।

रघुनाथराव को जल्दी पड़ी थी, 'परन्तु तुम्हारे आचार्य से नन्दा का क्या सम्बन्ध ?'

'बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है ।' उसने आदि से अन्त तक न बतलाने-वाली बात भी बतला दी और अन्त में भविष्यवाणी भी की, 'उसका अब आना असम्भव ही समझें । वह आचार्य को किसी भी दशा में नहीं छोड़ सकती ।

रघुनाथराव विस्फारित नेत्रों से देखते रह गये । उनके मुँह से कोई शब्द नहीं निकला । कुछ समय उपरान्त जैसे उनको होश आया । 'वीरेश बाबू,' उनको विश्वास नहीं हो रहा था । 'कुछ बात समझ में नहीं आती । हमारी नन्दा ऐसी नहीं थी ।'

'पिता का हृदय है न बाबूजी ! वह एक बार आँखों देखी घटना को भी झूठा कह सकता है । लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरी बात कहाँ तक सही है ।'

'पर....'

'सन्देह दो-एक दिन में दूर हो जायेगा । बेकार सोचने से कोई लाभ नहीं ।' वह उठ खड़ा हुआ । सम्भवतः उसे भी नन्दा के विषय में बातें करने से तकलीफ हो रही थी ।

'क्यों ?'

'जा रहा हूँ । कल आऊँगा ।' वह चला गया ।

दूसरे दिन रघुनाथराव वीरेश की प्रतीक्षा करते ही रहे, परन्तु वीरेश नहीं आया ।

*

आचार्य को रामखेलावन पसन्द आया। उन्होंने दूसरे दिन बुलाकर उससे पूछा, 'हरी इस गाँव का कौन है ?'

'पुलिसवालों का दलाल और हमारे गाँव का लम्बरदार, बाबूजी।'

'कांग्रेस का विरोधी है ?'

'कट्टर विरोधी।'

'गाँव में हमारे विरोधी और कौन-कौन हैं ?'

'नाजिरजी और रामधारी काका, परन्तु छिपे-छिपे। इधर की सब खबरें उधर दिया करते हैं। आप रामधारी काका और नाजिरजी को पहचानते हैं न ?'

'हाँ, पहचानता हूँ। शेष गाँव तुम्हारे पक्ष में है ?'

'पक्ष में होना-न होना बराबर है बाबू साहब। आन्दोलन के बाद से अंग्रेजों के अत्याचारों ने गाँव में मुर्दनी पैदा कर दी है। कांग्रेस के प्रति सहानुभूति सब की है, परन्तु आगे बढ़कर कोई काम करना नहीं चाहता। किसी को अब स्वतंत्रता मिलने की आशा नहीं। पुलिसवालों का अत्याचार अब और भी बढ़ गया है।'

'तो क्या शान्त बैठे रहने से अत्याचार कम हो जायेगा चौधरी ? तुम जितना दबोगे अत्याचार उतना ही बढ़ेगा। लोहा अब भी गर्म है। कोशिश करने से बहुत कुछ हो सकता है। डरकर बैठे रहने से काम बिगड़ेगा। अंग्रेज देश की जागी हुई भावना को पूरी तरह कुचल देना चाहता है। ऐसी दशा में शिथिल पड़ती हुई जनता की शक्ति को हमें सँभालना है।'

रामखेलावन ने आचार्य की ओर ध्यान से देखा, जैसे वह कुछ समझने का प्रयत्न कर रहा हो।

'मुझ पर विश्वास कर सकते हो चौधरी ? मैं तुम्हारे ही पक्ष का आदमी हूँ।' आचार्य मुस्कराये।

'क्या बात करते हैं बाबूजी ? आदमी क्षण-भर में परख लिया जाता है। क्या मैं इतना भी नहीं समझता ?' रामखेलावन ने आगे बात चलाई,

'इस गाँव में पढ़े-लिखे व्यक्ति तो हैं, परन्तु उनके भीतर वह भावना नहीं जो आपके अन्दर है। ये लोग खुलकर कुछ नहीं करना चाहते। रही बात मेरी, सो जो कुछ छोटी बुद्धि से कर पाता हूँ कर रहा हूँ और जब तक जान रहेगी जीवन-भर करता रहूँगा। सौभाग्य से अब आप मिल गये हैं तो जैसा आप कहेंगे वैसा करूँगा। जाति का अहीर हूँ इसी हिसाब से जो चाहिए करा लीजिए।'

आचार्य ने रामखेलावन की पीठ ठोकी, 'तुम बिना तराशे हुए हीरा हो चौधरी, हीरा। तुमसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई। तुम्हारे ऐसे आदमियों की इस समय देश को जरूरत है। कल दोपहर में कोई काम तो नहीं?'

'जी नहीं।'

'तो फिर कोई समय निकालकर आना। बातें होंगी। ठीक है न?'

'अच्छी बात है।' रामखेलावन चला गया।

आचार्य ने अपना काम यहाँ भी प्रारम्भ कर दिया। उन्हें एक साथी मिल गया था।

३१

चन्द्रवदनी मचान पर खड़ी चिल्ला रही थी, 'जाली गुड़ि जाली रे, बजड़ा के खेत से उड़ि-उड़ि जाली रे, जाली गुड़ि जाली रे!' फिर उसने 'हो-हो' करके गुलेल चलायी। बाजरे की बालों पर छिपकर बैठी हुई चिड़ियाँ फुर्र-फुर्र उड़ गईं। चन्द्रवदनी बैठ गई। खाली दिमाग ने कल्पनाओं का सहारा लिया और अतीत की स्मृतियाँ साकार होने लगीं। उसका हृदय व्यथा से कचोटने लगा। तब उसने अपने को धिक्कारा और धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाने लगी। उसके स्वर में मिठास थी। वह गा रही थी :

"मैं ना लड़ी, मोरे सईयाँ निकल गये ॥
जब से पिया सौतिन घर लाये,
मेरी कही उन्हें तनिक न भाये,
दे-दे सीख बहु पईयाँ पड़ी ॥
मोरे सईयाँ निकल गये ।
मैं ना लड़ी, मोरे सईयाँ निकल गये ॥"

वह गा रही थी सम्भवतः पीड़ा को भुलाने के लिए, परन्तु दिल का घाव कहीं मरहम-पट्टी से अच्छा हुआ है ? इसकी जितनी दवा की जाती है उतना ही बढ़ता है । उसने फिर गाया :

"मैं ना लड़ी, मोरे सईयाँ निकल गये ॥"

अचानक किसी ने नीचे से कहा, 'अगर लड़ी न होती तो चला क्यों गया ?'

चन्द्रवदनी ने आवाज पहचान ली । वह लजा गई ।

आगन्तुक ने सामने आकर कहा, 'क्यों, मैं झूठ कह रहा हूँ ?'

'झूठ नहीं तो क्या सच है ?' उसकी दृष्टि सामने बाजरे के खेत पर थी । 'अगर चला ही गया तो मेरा क्या ले गया ?'

'तेरा तो ले गया दिल, जो आज भी तड़पा करता है । बोल, सच है न ?'

'बिलकुल झूठ, बिलकुल झूठ, बिलकुल झूठ ! तुम्हारे कहने से कोई थोड़े मान लेगा ।'

'लेकिन हम कहाँ कह रहे हैं । कह तो तू रही है—मैं ना लड़ी, मोरे सईयाँ निकल गये ।'

'अच्छा अपने रास्ते जाओ । हमें तुमसे झक नहीं लड़ानी है ।'

रामखेलावन मचान पर धीरे से चढ़ता हुआ ऊपर आ बैठा ।

चन्द्रवदनी ने आँखें नीची कर लीं । रामखेलावन उसे निहारता रहा । चन्द्रवदनी वास्तव में चन्द्रवदनी है । शरीर का एक-एक अंग सुडौल और उभरा हुआ है, जो कि दृष्टि को बरबस खींच लेता है ।

'क्या सचमुच चनरबदनी, (वह गाँव में इसी नाम से पुकारी जाती थी) वह तुझे छोड़कर चला गया ?'

चन्द्रवदनी ने केवल सिर हिला दिया।

'तब तू दूसरा ब्याह क्यों नहीं कर लेती ? तेरे साथ एक क्या हजारों करने के लिए तरसेंगे।'

चन्द्रवदनी ने आँखें उठायीं। बड़े-बड़े कजरारे नेत्रों ने रामखेलावन को कहीं का न छोड़ा। 'पर मैं तो नहीं तरसती पहलवान !' वह मुस्करायी।

'तू तरसती नहीं, परन्तु दूसरों को तरसाती तो है !'

वह हँसने लगी, 'बड़ी आफत है। क्या गाँव छोड़कर चली जाऊँ ?'

'जहाँ जायेगी वहीं लोग तरसेंगे।'

'तो फिर तुम्हीं बताओ क्या करूँ ?'

'किसी से ब्याह कर ले।'

'और जब वह भी छोड़कर चला जायेगा, तब ?'

'वह क्या पागल होगा जो छोड़कर चला जायेगा ?' रामखेलावन गम्भीर था।

'पागल वह भी नहीं था।'

'पर दुराचारी तो था।'

'और इस बार जिससे ब्याह करूँगी वह सदाचारी होगा या ब्रह्मचारी ?' वह हँस पड़ी।

'हाँ, इन दोनो में एक तो होगा ही।' रामखेलावन ने भी हँसकर उत्तर दिया।

'और मैं इन दोनो को घोंघा समझती हूँ। और घोंघा कभी रसिया बन नहीं सकता, इसलिए उससे मेरी पट नहीं सकती।'

रामखेलावन बड़ा कटा, किन्तु वह जानता था कि चाहे ऊपर से चनरबदनी जो कहे, अन्दर से उसे ही चाहती है। अगर चाहती न होती तो इस प्रकार बातें कैसे करती ? उसने आगे बात बढ़ायी। बात बढ़ानी

ही चाहिए थी। चन्द्रवदनी से बातें करने के लिए गाँव का कौन युवक लालायित नहीं रहता था।

'क्या घोंघा को रसिया नहीं बना सकती चनरबदनी ?'

'बहुत कठिन है। थोड़ी देर के लिए अगर तुम्हीं को रसिया बनाया जाये तो क्या बन सकोगे ?' उसने कनखियों से देखा।

'औरों के लिए तो नहीं, परन्तु तुम्हारे लिए बनना ही पड़ेगा।' उसने अनायास ही उसके गालों को थपथपा दिया।

चन्द्रवदनी खड़ी हो गई। उसका चेहरा लाल हो उठा था। रामखेलावन कुछ समझ नहीं सका। उसने एक-दो बार उसकी ओर देखा, किन्तु वह दूसरी ओर देख रही थी। रामखेलावन धीरे से मचान से उतर आया।

चन्द्रवदनी का विवाह छुटपन में हो गया था। अहीरों की जाति में ऐसा ही नियम है। जब वह युवा हुई तो उसके माता-पिता ने गौना कर दिया। चूँकि उसका पति शहर में दूध का रोजगार करता था, अतः वह भी शहर में रहने लगी। नगर के वातावरण से उसने अच्छे गुण लिये। परिणामस्वरूप बोलचाल के साथ-साथ उसे भला-बुरा समझने का ज्ञान भी आ गया। गौने के दो वर्ष बाद ही उसका आदमी किसी पतुरिया के साथ कहीं भाग गया। चन्द्रवदनी लौटकर अपने घर आ गई। कुछ समय उपरान्त उसके घरवालों ने दूसरा ब्याह करने के लिए कहा, परन्तु उसने नाही कर दी।

बहुत दिनों से घर पर रहते-रहते तबीयत उचटने के कारण वह कुछ महीनों से राजापुर अपनी मौसी के घर आ गई थी। उसे राजापुर अच्छा लग रहा था।

३२

नन्दा की सेवा-शुश्रूषा आचार्य के घाव के लिए रामबाण हो गई थी। उनका घाव भर गया था। वह स्वस्थ होकर अब घूमने लगे थे। रामखेलावन उनका साथी और शिष्य दोनों बन गया था। उसके साथ आचार्य दो-दो, तीन-तीन कोस के फासले पर स्थित गाँवों में चक्कर लगाने लगे थे। लोगों से मिलना और उनके मन को समझना और आवश्यकतानुसार थोड़े में समझाना—अभी उनका यही कार्य था। कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के मिलने पर उन्हें एकान्त में अपना कुछ परिचय देकर, सविस्तार समझाते और इस बात पर जोर देते कि वे प्रत्येक से मिलकर उनकी शिथिल पड़ती हुई देश-भावना को बलवती बनायें। उन्होंने धीरे-धीरे गाँवों में अपना सम्पर्क करना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु उनका यह कार्य बड़ी सावधानी से हो रहा था। वह सतर्क थे।

राजापुर गाँव में भी वह लोगों से मिलने-जुलने लगे थे। कभी सवेरे किसी के दरवाजे बैठ जाते तो कभी भोजन के उपरान्त किसी खेत के डाँड़े पर विचार-विनिमय करते।

अहीर टोली गाँव के पश्चिम तरफ है। लगभग तीस या चालीस घर एक-दूसरे से सटे हुए एक सीध में बने हुए हैं। घर सब मिट्टी के हैं, जिनके आगे फूस के छोटे-छोटे छप्पर हैं। अधिकतर छप्परों में आवश्यकतानुसार जानवर भी बाँध दिये जाते हैं और लोग खाट डालकर एक तरफ सो भी लेते हैं। मकान छोटे-छोटे हैं, जिनके अन्दर छोटी-छोटी बिना खिड़कियों की कोठरियाँ हैं। रोशनी तथा हवा के लिए कहीं-कहीं मुक्के (बड़ा-सा गोल सुराख) बना दिये गये हैं। आँगन आवश्यकता से कम छोटे और अधिक गन्दे हैं। गन्दगी का कारण है विभिन्न वस्तुओं का एक ही स्थान पर एकत्रित होना। एक ओर बजड़ा उबालकर फैला दिया गया है तो दूसरी ओर अगहनियाँ धान कूटकर सुखाया जा रहा है। इधर-उधर लड़कों ने ऊख चूसकर बुकलों का ढेर लगा रखा है। सामने

पनडोहा बजबजा रहा है, जहाँ झूठे बरतनों पर मक्खियों का एकछत्र राज्य स्थापित है। यह है घरों की दशा।

गोधूलि बेला होने को आई। बच्चों की चिल्ले-पों बढ़ गई। नंग-धड़ंग बच्चे, जिनके हाथ-पैर पतले-पतले और पेट निकला हुआ, एक-दूसरे पर धूल फेंककर आनन्द से उछल रहे हैं। कभी-कभी स्वयं धूल में लोटकर दूसरों को गिराने का भी प्रयत्न करते हैं और तब उसी छीना-झपटी में लड़ाई हो जाती है। फलस्वरूप कोई रोने लगता है तो कोई रूठकर अलग बैठ जाता है। कोई-कोई अपनी मा के पास भी रोता हुआ शिकायत लेकर पहुँच जाता है। थोड़े समय के लिए कुट्टी हो जाती है, परन्तु तत्काल फिर वही कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है। उनके पास मनोरंजन के यही साधन हैं। यह है भारत के बच्चों की दशा।

स्त्रियाँ पानी भरने में लगी हुई हैं। जानवर आनेवाले हैं, इसलिए नाँदों में पानी भर जाना आवश्यक है। नई-नवेली बहुएँ, घूँघट की ओट से, कजरारे नेत्रों से बाण छोड़ती, एक-दूसरे से होड़ लगाकर झटपट काम समाप्त कर देना चाहती हैं। गाँव में भौजी का पद जोड़नेवाले छैले, 'बुढ़वा कुआँ' पर खड़े बोलियाँ बोल रहे हैं। इस समय बड़े-बूढ़े इधर से नहीं निकलते। अगर भूल से कोई निकल भी आया तो सिर झुकाये जल्दी से चला जाता है। उन्हें भी तो अपने दिन याद हैं।

संझा हो गई थी। दिये जल गये थे। दिन-भर के अनवरत परिश्रम के उपरान्त अब दम मारने को फुर्सत मिली थी। रामदत्त के द्वार पर कौड़ा के चारों ओर ज़त्तन, पत्ता, रामनाथ, छांगुर, ढेंढिया, सरजू, किसुन लोहार, सुखदेव कमकर बैठे खेत-खलिहान की बातें कर रहे थे। इसी बीच रामधारी सामने से आते हुए दिखलाई पड़े। समीप आने पर ढेंढिया ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, 'क्यों काका, क्या हुआ ?'

'होता क्या ?' रामधारी पैर पर जमी गर्द को झाड़ते हुए बोले, 'जीत गये।' रामधारी की प्रसन्नता फूटी पड़ रही थी।

सरजू ने सिर उठाकर देखा, 'आज कोई तारीख थी ?'

'वही जगरनाथलालवाला मामला था न ?' ढेंढिया ने जवाब दिया।

रामधारी ने खड़े-खड़े कहा, 'जगरनाथलाल ने हमें धौंस में लेने के लिए मुकदमा चलाया था। परन्तु सरकार ने तो कानून बना दिया है कि अगर कोई खेत तीन साल से अधिक किसी की जोत में है तो वह खेत जमींदार का नहीं, जोतनेवाले का हो जायेगा। और फिर यह खेत तो हमारे पास आठ-दस साल से है। जगरनाथलाल ने बेकार पैसा गँवाया।' उसने पैर बढ़ाये, 'मुँह हाथ-धोकर आते हैं।' वह चला गया।

'काका को पन्द्रह मंडा खेत सेंत में मिल गया। यह कानून सरकार ने अच्छा बनाया है। अब अगर बाबू भी चाहें तो जमादार चाचा का ढाई बीघेवाला खेत मिल सकता है। क्यों दद्दू ?' ढेंढिया का सम्बोधन सरजू को था।

'हाँ, अगर रामधारी की तरह तुम्हारे बाबू भी बेईमानी पर कमर कस लेंगे तो कोई मुश्किल नहीं।' सरजू गाँव-भर में नेक और ईमानदार समझे जाते थे। आयु ६० से कम न थी। किन्तु शरीर में सिकुड़न दिखलाई नहीं पड़ती थी।

ढेंढिया को सरजू की बात अखरी, 'इसमें बेईमानी क्या है दद्दू ? खाद-गोबर हम डालें, जोते-बोयें हम, साल-भर बैलों की तरह मेहनत करें हम और खलिहान में ओसावन के बाद आधा अनाज उनका हो जाये। यही इन्साफ है ? इसे तुम ईमानदारी कहते हो ? वाह, यह अच्छी रही !'

सरजू को बहस करना तो आती नहीं थी। वह केवल सीधी-सादी बातें ही कह सकते थे, 'देखो ढेंढी, इतनी बातें तो मैं जानता नहीं, और न आज तक जानने की जरूरत ही पड़ी है और अगर अब जरूरत भी पड़े तो मैं जानना भला नहीं समझता। क्योंकि आज की जानकारी में दुःख है और हमारी पुरानी जानकारी में सुख।'

'यह कहा है सरजू भाई ने !' सुखदेव कमकर गहराई तक सोच-कर बोले, 'इसी आपसी झगड़े से तो गोरे फायदा उठा रहे हैं। आपसी

भाईचारा तो अब रह ही नहीं गया। थोड़ी देर के लिए मान लो, अगर जमींदार को फायदा है तो होने दो। पूरब जनम की कमाई को तुम थोड़े मेट सकते हो ढेंढी। तुम्हें जितना बदा है वही मिलेगा। आपस में मिल-कर पहले इन गोरों को तो हटाओ, फिर ये छोटे-छोटे जमींदार भी मिट जायेंगे। क्यों सरजू भाई ?'

सरजू मुस्कराये, 'क्या बताया जाये सुखदेव ! सब बातें ही बदल गईं। स्वारथ के आगे भला-बुरा कौन सोचता है ! और यही कारण है कि न सन्तोख है न सान्ति। सब एक-दूसरे का गला काटने की ताक में बैठे रहते हैं। ढेंढिया सोचता है, मौका आ गया है। बैठे-बैठाये उसे ढाई बीघा खेत मिल जायेगा, पर उसे यह कौन समझाये कि इस ढाई बीघे के पीछे उसके और जमादार साहब के बीच वह गाँठ पड़ जायेगी जो शायद पीढ़ियों तक न मिट सके। ढाई बीघे के लिए वह उस सम्बन्ध को तोड़ देना चाहता है जहाँ एक-दूसरे के दुःखों पर जान देने को तैयार रहते हैं। इसे कौन समझाये ?'

सब के विषय में तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु उस समय सरजू की बात जत्तन के मन में बैठ गई। 'ढेंढिया अभी नासमझ है काका ! इतनी बारीक चीज समझने के लिए दिमाग चाहिए। रामधारी भइया चाहे जो करें, लेकिन मैं जमादार साहब के साथ बेईमानी नहीं कर सकता। उन्होंने सदा हमारा पालन-पोषण किया है।'

बातों की तन्मयता के कारण वहाँ बैठे हुए व्यक्ति यह न समझ सके कि आचार्य कब आये। परन्तु रामदत्त ने देख लिया। वह झट से उठ-कर मचिया ले आया। सब लोगों ने बड़े आदर से उन्हें बिठलाया।

'अकेले बैठे-बैठे जी ऊब रहा था, सोचा आप लोगों के पास ही चलकर बैठूँ। अब तबीयत पहले से ठीक है। इसलिए इधर-उधर घूमे बिना खाना हजम नहीं होता।'

'हम लोगों के भाग हैं बाबूजी, कि आप हमारे दरवाजे आ गये, नहीं भगवान ने हम लोगों को इस लायक कहाँ बनाया ?'

'रामखेलावन नहीं दिखलाई पड़ रहे ?'

'यह समय उनके अखाड़े का है न ?'

'और रामधारीजी ?'

'आते ही होंगे। आज तारीख थी। कचहरी से अभी-अभी आये हैं।'

'कोई मुकदमा था ?'

'खेत का था।' ढेंढिया ने बतलाया। तब उसने सारी कहानी सुना दी।

आचार्य ढेंढिया के मन में छिपे भाव को न समझ सके, परन्तु इतना उन्होंने अनुमान लगा लिया कि यह युवक इस विषय में विशेष दिलचस्पी रखता है। अतः उन्होंने समझा देना उचित समझा। वह बोले, 'आप लोग शायद इसकी गहराई तक नहीं पहुँचे हैं। रामधारीजी ने यह अच्छा नहीं किया।' बूढ़े सरजू की आँखों में खुशी नाच गई। वह बतला रही थी कि उसका अनुभव कितना सही है।

ढेंढिया को सरजू की खुशी गड़ने लगी। उसने कहा, 'क्यों बाबूजी, आप शहर के पढ़े-लिखे आदमी होकर भी ऐसी बातें करते हैं ?'

'तुम्हें मेरी बात उलटी लग रही होगी। किन्तु शान्त मन से सोचोगे तब असलियत मालूम होगी। इस देश में गाँव ज्यादा हैं और नगर इनेगिने। यह तुम जानते हो न ? दूसरी बात, किसी भी देश और समाज की तरक्की वहाँ के रहनेवालों के मेल-जोल और भाईचारे से हो हो सकती है। अगर घर के भीतर कलह और ईर्ष्या है तो तुम्हीं सोचो वह देश और समाज कैसे सुखी हो सकेगा और जब तक आम लोग सुखी नहीं, हमारे-तुम्हारे सुखी होने से कोई लाभ नहीं।' आचार्य ने ढेंढिया की ओर देखा, 'तुम शायद मेरी बात को अभी समझ नहीं सके हो।' रामधारी आकर बैठ चुके थे। 'माना, रामधारीजी ने मुंशी जगरनाथलाल का खेत ले लिया और यदि इनके पास ऐसे और लोगों के खेत हों तो मुमकिन है उन्हें भी ले लें। परन्तु अन्त में इसका नतीजा क्या होगा ? एक ओर पाँच लोग होंगे और दूसरी ओर अकेले रामधारीजी।'

'अकेले क्यों ? हम लोग भी उनके साथ होंगे।'

आचार्य मुस्कराये, 'ठीक। फिर क्या होगा ?

'होगा यही कि वे हमारी जड़ खोदेंगे और हम उनकी। पर इससे डरता कौन है ?'

'खोदने-खादने में मुकदमेबाजी होगी या नहीं ?'

'जरूर होगी।'

'तुम कचहरी आने-जाने लगोगे और मेहनत की गाढ़ी कमाई कचहरीवालों को देना शुरू कर दोगे। खेती-बारी में जो नुकसान होगा सो अलग। फायदा क्या हुआ ? जिस सुख के लिए अपनी नीयत खराब करके लोगों के खेत हड़पे थे उस सुख को भी नहीं भोग सकोगे। तो न तुम इधर के रहे न उधर के। गाँव-घर में जो प्रेम और भाईचारे का बर्ताव था वह भी खत्म हुआ और पैसा कचहरीवालों ने लूट लिया। तुम जहाँ थे उससे भी पीछे आ गये और रोज-रोज पीछे ही होते जाओगे। क्योंकि मनमुटाव की नींव पड़ गई।'

'वाह बाबूजी !' सरजू ने गद्गद होकर कहा, 'क्या समझाया है ? दूध का दूध और पानी का पानी बिलकुल अलग कर दिया। पढ़े-लिखे और हम गँवारों में यही फर्क है।'

'हमने नीयत नहीं बिगाड़ी है बाबूजी ! जब उनका समय था तो उन्होंने हमें दबाया। आज हमारा अवसर है तो हम उन्हें दबाकर चलेंगे।' रामधारी कुछ क्रोध में आ गया था।

'खूब दबाकर चलिए, मुझे कोई एतराज नहीं; लेकिन आप यह तो बतलाइए कि जब उनका समय था तब आप सुखी थे या अब ?'

रामधारी उत्तर ढूँढ़ने लगे।

आचार्य ने आगे बात चलाई, 'देखिए, आपने जमीन ले ली, इसे मैं बुरा नहीं समझता, लेकिन लेने का जो तरीका है उसे मैं बुरा समझता हूँ। सरकार को यह काम खुद करना चाहिए था, परन्तु अंग्रेज कितने चालाक हैं, इस पर आपने कभी ध्यान नहीं दिया। उन्होंने इस तरह

के कानून बनाकर हमारे बीच फूट पैदा कर दी। हम एक-दूसरे के दुश्मन हो गये। भाईचारे का सम्बन्ध जाता रहा।' आचार्य सब-कुछ कह रहे थे और कुछ भी नहीं कह रहे थे।

'तब तो आपके मतानुसार काका को इस्तीफा देकर खेत छोड़ देना चाहिए ?' ढेंढिया व्यंग्य के स्वर में बोला।

'यह मैं कैसे कह सकता हूँ ढेंढीराम। आप अपना भला-बुरा खुद सोच सकते हैं। मैंने तो एक बात बतलाई थी। आपको करना चाहिए अपनी इच्छानुसार ही।' आचार्य ने हँसकर आगे कहा, 'और आप जानते ही हैं कि मैं शहर का रहनेवाला हूँ। मैं यों भी देहातों के बारे में कम ही जानता हूँ।'

'यह बात नहीं बाबूजी। इस समय तो आपने लाख रुपये की बात बतलायी। समझदार के लिए इशारा काफी है।' सरजू को आचार्य की बातें बहुत भली लगी थीं। 'अगर इस तरह की समझ आ जाये तो कहना ही क्या ?'

इतने में आचार्य को ढूँढ़ता हुआ जगदीश आ पहुँचा। सब को राम-राम कर आचार्य उसके साथ चले गये।

बहुत रात गये बँसवारी के पास रामधारी और जत्तन बैठे आपस में फुसर-फुसर करते रहे।

*

जत्तन ने खेत से इस्तीफा नहीं दिया। जमादार साहब के पूछने पर उसने कहला दिया कि खेत अब मेरा है, उनका नहीं। उन्हें जो कुछ करना हो करें, मुकदमा करना हो तो अदालत जायें।

बटाई के हिसाब से अनाज, जो जमादार साहब का आधा भाग होता था, उसे भी जत्तन ने नहीं दिया। जमादार साहब ने कई बार बुलाकर समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु सब बेकार। अन्त में उन्हें मुकदमा दायर करना ही पड़ा।

३३

धूप निकल आई थी। लान में भोला ने कुर्सियाँ डाल दी थीं। मोर और मोरनी नीचे उतरकर फूलों की क्यारियों में कीड़े-मकोड़े चुगने लगे थे। जमादार साहब ने यह जोड़ा कानपुर से मँगाया था। इधर, पूरब की ओर मोर नहीं पाये जाते हैं। हुक्का भरकर भोला ले आया। जमादार साहब बैठकर गुड़गुड़ाने लगे। थोड़ी देर में आचार्य भी जगदीश के साथ जलपान करके बैठक से निकले। बाबू जगदमसहाय का पता करवाया गया। मालूम हुआ ताड़ी लेने गये हैं। आते ही होंगे। अभी उनकी बात चल ही रही थी कि सामने से लभनी में ताड़ी लिये आ पहुँचे। आचार्य और जगदीश हँसने लगे।

'आइए, आप ही की बात चल रही थी।' आचार्य ने कहा।

जगदमसहाय मुस्कराते हुए कुर्सी पर बैठ गये और भोला को छानने के लिए एक कपड़ा तथा दो गिलास लाने का आदेश दिया। 'क्या बतायें जनाब, जब आप शौक ही नहीं करते तो कहना बेकार है, लेकिन सच मानिए, इसके लिए देवता भी तरसते हैं।' जगदमसहाय बड़ी मस्ती में दिख रहे थे। सम्भवतः वहाँ से भी वह चढ़ाकर आये थे।

भोला गिलास और छनना ले आया।

'मैं नहीं पिऊँगा जगदम। इस....'

यह नहीं हो सकता चचा साहब। मैं चिखुरिया ताड़ से अपने सामने उतरवाकर ला रहा हूँ। पीकर तो देखिए। फिर चाहे फेंक दीजिएगा।'

'लेकिन इस वक्त....'

'लीजिए, लीजिए। बाद में फसल निकल जाने पर यही सुनने को मिलेगा कि इस साल जगदम ने अपने हाथों पिलाया ही नही।'

जमादार साहब को लेना पड़ा। फिर क्या था ? चिखना के लिए भी हुकुम हुआ। भोला भिगाई चने की दाल में प्याज, मिर्चा, नमक

मिलाकर ले आया। धीरे-धीरे पीने का दौर चलने लगा। बाबू जगदम-सहाय कुछ अधिक मस्ती में आये। बोले, 'उस दिन चचा साहब, नाजिर-जी हमें बेहोश बतला रहे थे ! और अभी चलकर देखिए वहीं रमलल्वा की मड़इया में कल से बेखबर पड़े हैं। मेरा मुकाबला करते हैं ! मैं तो चचा साहब, अगर दो-चार दिनों तक इसी तरह लगातार पीता रहूँ तब भी मेरी हरकत या आवाज में फर्क नहीं पायेंगे।' जगदमसहाय की वैसे जबान लटपटा रही थी।

आचार्य और जगदीश ने मुँह में रूमाल दबा लिया था। जमादार साहब को भी कुछ-कुछ सुरूर आने लगा था।

'मुझे नहीं देखते ! खैर यह तो ताड़ी है, इसकी कौन-सी गिनती, शराब चाहे बोतल या दो बोतल हो, लेकिन आज तक मुझे किसी ने लड़खड़ाते नहीं देखा। गोपाल बाबू, मैंने जेल में छत्तीस साल नौकरी की है और एक मामूली सिपाही से जेलर तक रहा, लेकिन कभी किसी को गलती पकड़ने का मौका नहीं दिया। जब कि दिन-रात चौबीसों घण्टे शराब पिये मस्त रहा करता था। आपको एक किस्सा बतायें। तब मैं आरा में बड़ा जमादार था। सब-जेल होने की वजह से वहाँ जेलर न रखकर बड़ा जमादार ही रखा जाता है। वहाँ का इञ्चार्ज वही होता है। जेल सुपरिंटेंडेंट साहब केवल सुबह एक बार गश्त लगाकर चले जाते हैं।

'आरा में उस जमाने में एक तिरिपित बाबा औघड़ रहा करते थे। उनकी उस समय उम्र लगभग नब्बे वर्ष की होगी। लेकिन वहाँ के बुजुर्ग बतलाते थे कि उन लोगों ने भी अपने बचपन में उन्हें ऐसा ही देखा है। उनके दाँत सब गिर चुके थे और नये दाँत निकल रहे थे। शहर के बाहर जहाँ मुर्दे जलते हैं वहीं उनकी कुटिया थी। अन्दाजन बारह बजे दोपहर में उनकी कुटिया का दरवाजा खुलता था। उस समय वहाँ शहर के चार-छह व्यक्ति, जिसमें हाकिम-हुक्काम और लल्लू-गजधर सभी तरह के हुआ करते थे, अपना श्रद्धानुसार भोजन सहित उपस्थित

हो जाया करते थे। तब वह कुटिया के बाहर निकलकर एक बार सबकी ओर नजर दौड़ाते और जिसको ठीक समझते, चाहे वह सत्तू ही क्यों न लाया हो, लेकर खाने लगते थे। बाकी लोगों को बड़ी जोरों से डाँटते हुए कहते थे— फेंक, फेंक, फेंक ! सब को विवश होकर भोजन फेंकना पड़ता था। चाहे वे लोग छप्पनों प्रकार के पकवान क्यों न लाये हों। और अगर किसी ने कुछ प्रार्थना के रूप में कहना भी चाहा तो उसे वह मा-बहिन की सैकड़ों गाली सुनाते, फिर चिल्लाते हुए कहने लगते— जा, जा, पहले अपनी औरत से तो पूछ। चला है तिरिपित को भोजन कराने। कपटी ! तेरी बीबी तैयार भी थी? गोपाल बाबू, मैंने उन्हीं लोगों से सुना है कि जब वे आकर अपने घरों में पता लगवाते तो तिरिपित बाबा की बात सच निकलती थी।'

जमादार साहब ने गिलास खाली करके जगदमसहाय की ओर बढ़ा दिया। 'इतना ही नहीं, उनमें एक और ईश्वरी देन थी। उनके यहाँ दूर-दूर से नाना प्रकार के रोगी दवा के हेतु आया करते थे। और मजा यह कि जिसने उनकी दवा खा ली वह अच्छा भी हो गया। आप पूछिएगा उनकी दवा क्या थी? काली मिर्च और भुने लाल मिर्चें। खुराक थी कम-से-कम एक मुट्ठी और ज्यादा से ज्यादा तीन मुट्ठी।'

आचार्य की फैली हुई आँखें अविश्वास प्रकट करने लगीं।

'यह मैं आँखों देखी बात बतला रहा हूँ। खैर, जो मैं बतलाना चाह रहा था उसे मैंने बतलाया ही नहीं। एक दिन दोपहर को घर पर एक सेठजी ब्रांडी की बोतल दे गये। कैदियों के खाने के बाद जब मैं डेरे पर आया तो मुझे बोतल मिली। तबीयत आ गई। फिर क्या था, बोतल खुल गई। सोचते-सोचते चार-छह पेग चढ़ गये। नतीजा यह हुआ कि आलस्य के कारण दोपहर में नींद आ गई। मुझे अब भी याद है कि नींद लगी ही थी कि मास्टर की मा ने झकझोरते हुए मुझे जगा दिया। मैं घबड़ाकर उठ बैठा और इसके पहले कि कुछ पूछूँ मेरे कानों में पगली घंटी का आवाज सुनाई पड़ी। नथवा भाग गया !—मेरे मुँह

से निकला। मैं फाटक की ओर दौड़ा। मुझे दो दिन पहले कुछ भनक मिली थी कि नथवा को भगाने का एक-दो सिपाहियों द्वारा प्रबन्ध हो रहा है। मैंने फाटक पर पहुँचते ही पूछा—नथवा है ? सिपाहियों ने देखा। नथवा नहीं था। खैर, जो कुछ प्रबन्ध करना चाहिए था, वह प्रबन्ध किया, फिर सीधा दौड़ता हुआ तिरिपित बाबा के पास पहुँचा। वह मुझे दूर से देखकर चिल्ला पड़े—कैदी भाग गया क्यों रे ? अच्छा जा, शाम तक पकड़ जायेगा। तेरा कुछ नहीं होगा। मैं उनके पैरों पर गिर पड़ा। वह मेरे सिर पर चाँटा मारकर कुटिया के अन्दर चले गये।

'गोपाल बाबू, दूसरे दिन मुझे खबर मिली कि वह उसी दिन शाम को आरा से दस मील पर पकड़ लिया गया। उस केस में मेरा कुछ भी नहीं हुआ। दो सिपाहियों का डिसमिसल हो गया।'

मुंशी जगन्नाथलाल की खटपटी सुनाई पड़ी। वह कागजों के बंडल सहित खटर-पटर करते आ पहुँचे। बात कुछ और हो रही थी, होने लगी कुछ और।

आचार्य और जगदीश उठ गये।

*

कुछ दिनों से नन्दा अपने आन्तरिक द्वन्द्व के कारण बड़ी उलझी-उलझी रहने लगी थी। वह सोचती-विचारती बहुत, परन्तु निष्कर्ष नहीं निकल पाता था। उसने अपने को आचार्य की पत्नी घोषित कर दिया था। सिन्दूर भी लगाने लगी थी। उनकी सेवा-शुश्रूषा भी उसी लगन से करती, जितनी किसी एक पत्नी को करनी चाहिए; परन्तु आकर्षण की वह शक्ति, जिसने माता-पिता, घर-द्वार सब छुड़वा दिया था—आज अनायास क्यों उसके सम्मुख घुटने टेकने लगी, वह समझ नहीं पाती। वह जिस आचार्य को पाने के लिए कभी दीवानी हो रही थी, आज उसे प्राप्त कर लेने पर उतनी ही परेशान क्यों दिख रही थी ? उसकी उलझन बढ़ती गई। और यही कारण था कि जब आचार्य उसके समीप आ रहे थे तो वह बीच दरिया में पहुँचकर यह सोचने लगी कि नदी को पार

करूँ, या पीछे लौट चलूँ ? 'दुविधा में दोनो गये माया मिली न राम' वाली कहावत कहीं चरितार्थ न हो जाये—अब उसे यह भय सता रहा था।

आचार्य का खिचाव नन्दा के प्रति धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था, किन्तु स्वयं का संकोच तथा नन्दा की न समझ में आनेवाली मनः-स्थिति उन्हें पूर्ण रूप से कुछ कहने नहीं दे रही थी। उन्होंने दो-एक बार प्रयत्न भी करना चाहा, परन्तु अवसर उपयुक्त न समझकर चुप हो रहे। आजकल-आजकल करते-करते आचार्य स्वस्थ भी हो गये और समस्या जहाँ-की-तहाँ बनी रही।

*

दोपहर का सूरज नीचे को ढलने लगा था। धूप कुछ आनन्द देने लगी थी। आचार्य ओसारा में बैठे अखबार के पन्ने उलट रहे थे। जगदीश अभी किसी काम से थोड़ी दूर पर दूसरे गाँव में चला गया था। जमादार साहब अन्दर अपने कमरे में खर्राटे भर रहे थे। आचार्य ने नन्दा को अन्दर से बुलवाया। नन्दा चाची के पास बैठी गेहूँ बीन रही थी। छोड़कर आई

'अन्दर कोई खास काम कर रही हो ?' आचार्य ने बड़ी प्यार-भरी दृष्टि से देखा। नन्दा की लावण्यता कुछ अधिक बढ़ गई थी।

'नहीं तो।'

'नदी की ओर चलोगी ?'

'आपकी तबीयत है तो चलिए। चाचीजी से कहती आऊँ।' वह जल्दी से कहकर आ गई।

रास्ते में किसी ने कुछ नहीं कहा। दोनो मौन रहे। नदी के किनारे पहुँचकर आचार्य बोले, 'नाव पर चलें ?'

'चलिए।'

दोनो आकर बैठ गये। नाव खोल दी गई और वह बहाव की ओर धीरे-धीरे बहने लगी।

'मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ ।' आचार्य ने बहुत साहस बटोरकर कहा था, फिर भी उनकी आँखें नीचे को ही देख रही थीं ।

नन्दा कुछ बोली नहीं ।

'मैं सोचता हूँ जितना तुमने मेरे लिए किया है यदि उसके बदले मैं कुछ करना चाहूँ तो सम्भवतः इस जीवन में उसका शतांश भी करने में समर्थ न हो सकूँगा । फिर भी मेरे पास जो कुछ है मैं पूर्णरूप से तुम्हीं को सौंप देना चाहता हूँ ।'

'लेकिन आपको सन्देह कैसे हुआ कि जो कुछ मैंने किया है किसी बदले के विचार से किया है ?'

'बदले का विचार नहीं है, मेरा नन्दा । लेकिन मैं अब केवल बदला ही दे सकता हूँ । तुम्हारे उस स्तर तक पहुँचना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है ।'

'तो मुझे बदले की आवश्यकता नहीं । उसे आप अपने पास ही रखें ।' उसने बड़े भावपूर्ण नेत्रों से देखा ।

आचार्य का हृदय खिल उठा । 'ठीक है । जब भाग्य ने काँटों से उलझना ही सीखा है तो फूलों की दुनिया से क्या वास्ता !'

'वास्ते और गैरवास्ते का मुझे कोई अनुभव नहीं परन्तु भाग्य की प्रधानता तो माननी ही पड़ेगी ।' प्रकृति के आँगन में प्रेम का अंकुर विकसित होने लगा था । रूप बड़ा मधुर था ।

'सिर्फ कमजोरों के लिए ।'

'यहाँ प्रश्न भी कमजोर का है । बलिष्ठ होता तो यह नौबत न आती । हवा का रुख कुछ और होता ।' नन्दा बहुत कुछ कह गई थी ।

'कमजोर भी तो शक्तिशाली बन सकता है ?'

'हाँ ।' उसने मुँह बनाया, 'तब वह संसार में अकेला होगा ।'

'और यदि अभी बन जाये, तो ?'

'फिर नया मुसलमान प्याज-प्याज चिल्लानेवाली दशा हो जायेगी । बनता हुआ काम भी बिगड़ जायेगा ।'

आचार्य ने धीरे से उनका हाथ लेकर अपनी हथेलियों में दबा लिया, 'बिगड़ न जाये, वरना जिन्दगी खराब हो जायेगी।'

नन्दा की आँखें उठीं और नीची हो गईं।

'अब और कितने दिनों तक प्रतीक्षा करनी होगी?'

'चलिए लौटें। घर पहुँचते-पहुँचते देर हो जायेगी।' नन्दा ने हाथ खींचना चाहा।

'ऊहूँ! बात पक्की हो जाने पर।'

नन्दा ने बड़ी मादक दृष्टि से घूरा। 'शक्तिशाली बन गये न? अब जबर्दस्ती भी की जा सकती है?'

आचार्य मुस्कराने लगे, 'बनाया तुम्हीं ने है। मिले हुए अवसर से क्यों न लाभ उठाया जाये?' आचार्य दूसरी ओर बैठकर डाँड़ों को चलाने लगे।

३४

सन्ध्या का समय था। गाँव में चिराग जलने लगे थे। किसी के द्वार पर लालटेन जल रही थी तो किसी के ओसारे में ढिबरी या दीया जल रहा था। जिनके पास इतनी भी सामर्थ्य नहीं थी उनके द्वार पर अन्धकार का राज्य था। किसानों के घरों में जुन्हरी और बजड़े की रोटियाँ पकने लगी थीं। दो-एक बच्चे अपने पिता के पास थे तो दो-एक चौके में मा के पास।

दिन-भर के परिश्रम के उपरान्त उस समय अवकाश मिलने पर कुछ लोग कौड़े में बैठे बातें कर रहे थे तो कोई खाट पर लेटा हुआ अपने बच्चे को खेला रहा था। हरिनारायण लम्बरदार के दरवाजे पर सन्ध्या समय नित्य बैठक होती। हर तरह के व्यक्ति वहाँ आते थे। मूर्ख-से-मूर्ख

और चतुर-से-चतुर। गाँव की राजनीति बड़ी विचित्र होती है। वहाँ स्याह को सफेद और सफेद को स्याह करना साधारण कार्य है।

बरामदे में लालटेन लटक रही थी। बाबू हरिनारायण एक ओर खाट पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। सामने पड़े तख्त पर गाँव के चार-छह व्यक्ति बैठे हुए थे। इस समय राजनीतिक विषयों पर बातचीत चल रही थी। हरिनारायण ने कहा, 'चाहे हमारे नेता जितने काबिल हों, लेकिन अंग्रेजों के दिमाग को पाना बड़ा मुश्किल है। मेरी धारणा है कि उनसे राज्य नहीं छीना जा सकता।'

'स्वराज्य मिलेगा और डंके की चोट पर मिलेगा। जनता की कुर्बानियाँ निष्फल नहीं जायेंगी'। रमाशंकर होमियोपैथी का डाक्टर है और हरिनारायण का पट्टीदार भी। बोलने में वह किसी से डरता नहीं।

'देखते-देखते तो शताब्दियाँ बीत गईं डाक्टर, परन्तु अंग्रेज का बाल तक बाँका न हो सका। और इतने वर्षों के बाद साहस बटोरकर कुछ किया भी तो अंग्रेजों ने उसे ऐसा कुचला कि अब उनके नाम से शरीर में कँपकँपी दौड़ने लगती है।'

तब तक सामने से बिदेसिया के साथ रामखेलावन को आता हुआ देखकर हरिनारायण कुछ सोचते हुए हुक्का पीने का बहाना करने लगे। दोनो आकर तख्त पर बैठ रहे।

'कहो रामखेलावन, कैसे आना हुआ?' हरिनारायण ने पूछा।

'कुछ आपसे बिनती पूर्वक कहने आया था।' रामखेलावन ने नम्रता से कहा।

'कहो, कहो। तुम्हारी बात तो माननी ही पड़ेगी।'

'आप बड़े बुजुर्ग हैं। आप जो भी करें हमें तो सहना ही होगा, परन्तु इतनी बात, लम्बरदार, ध्यान में अवश्य रखें कि किसी को दंड सच्चाई और झुठाई को परखकर तब दिया जाये। आप सच मानें, बिदेसिया ने केवल बंसी से मछली मारी थी। पता नहीं किसने आपको जाल से मारने की सूचना दे दी।'

'देखो रामखेलावन, मैं कोई भी काम बिना-सोचे-समझे नहीं करता। यह मेरी पुरानी आदत है। जब मुझे पता लग गया तभी मैंने उसे बुलवाया था और इससे तुम पूछो, यह खुद उस दिन दारोगाजी के सामने कबूल रहा था। क्यों बिदेसिया, तुमने कहा था या नहीं?' हरिनारायण धौंस दे रहे थे।

'झूठ-मूठ इलजाम न लगाओ मालिक। जब मैंने जाल से मारी नहीं तो बतलाता कैसे?' बिदेसिया सच-सच कह रहा था।

'तब तो मैं ही झूठ बोल रहा हूँ, क्यों?'

'इसके लिए मैं संकरजी की पिंडी उठा सकता हूँ मालिक। आप इसकी परीछा ले सकते हैं।'

लम्बरदार बमक पड़े, 'तो इतनी छोटी बात के लिए, तू चाहता है, कि मैं भी शंकरजी की पिंडी उठाऊँ? अबे साले, गाँव में रहना चाहता है या नहीं? क्या रामखेलावन को साथ लेकर धमकाने आया है? क्या....'

'यह लम्बरदार, आपकी सीनाजोरी है। जब सच्चाई के लिए वह शंकरजी की पिंडी उठा सकता है तो जरूरत पड़ने पर आपको उठाने में क्या लज्जा? हरीश्चन्द्र ने सत्य के लिए क्या-क्या नहीं किया था?'

हरिनारायण और भड़के, 'रामखेलावन, तुम अपनी नेतागीरी अपने पास रखो। मैंने तुम्हें इन्साफ के लिए यहाँ नहीं बुलवाया है। समझे?'

'समझता तो मैं बहुत कुछ हूँ लम्बरदार, परन्तु आप जो नहीं समझते। जिसको चाहा गाली दी और जिसको चाहा पीटा, जैसे गाँव के मालिक ही हो।'

'मैं कहाँ गाँव का मालिक हूँ। मालिक तो तुम हो। अखाड़े के बहाने चोरों और डकैतों को इकट्ठा करके चोरी का माल हजम हो रहा है न! गर्मी तुम्हें नहीं तो क्या मुझे होगी?' हरिनारायण ने जाल बिछाया।

रामखेलावन तिलमिला उठा, 'कभी आपके यहाँ भी चोरी हुई है?' वह कठोर शब्दों में बोला।

'जिस दिन मेरे यहाँ चोरी हो जायेगी उस दिन बोटी-बोटी नुचवा लूँगा। नेतागीरी भूल जायेगी।'

रामखेलावन के बदन में आग लग गई। उसने बिना ऊपर-नीचे सोचे झपटकर हरिनारायण को दे मारा और दो-चार पहलवानी घूँसे लगाये। लोगों ने 'हाँ-हाँ' करते हुए रामखेलावन को हटा दिया।

अविलम्ब रामखेलावन बिदेसिया को लेकर चलता बना। गाँव में दो-चार दिनों तक नाना प्रकार की अफवाहें उड़ती रहीं, परन्तु लम्बरदार ने रामखेलावन के खिलाफ किसी प्रकार की कोई कार्यवाही नहीं की। लोगों को बड़ा आश्चर्य था।

*

चन्द्रवदनी मचान पर खड़ी चिल्ला रही थी, 'जाली गुड़ी जाली रे, बजड़ा के खेत से उड़-उड़ जाली रे'—फिर उसकी भननन करती हुई गुरदेल की गोली निकल गई। फुर्र-फुर्र चिड़ियाँ उड़ने लगीं। उसने खेत के दूसरी ओर मुँह घुमाया 'जाली गुड़ी जाली रे'—कहती हुई गुरदेल चला दी। चिड़ियाँ फुर्र-फुर्र उड़ गईं। फिर वह दाहिनी तरफ मुड़ी। दोपहर का सन्नाटा सम्भवतः उसे कुछ स्मरण दिला रहा था, परन्तु काम की अधिकता जताकर उसे वह दबा देना चाहती थी।

अचानक सामने रामखेलावन आते हुए दिखलाई पड़े। उसके हृदय ने धीरे से कुछ कह दिया। वह जरा जोर से चिल्लाई, 'जाली गुड़ी जाली रे, बजड़ा के खेत से उड़-उड़ जाली रे!'

रामखेलावन ने एक बार आँखें उठाकर देखा, फिर वह मचान के समीप से डाँड़ पर दूसरी ओर मुड़ गया। चन्द्रवदनी समझ रही थी। रामखेलावन के दस कदम जाने पर उसने पुकारा, 'रामखेलावन चौधरी, ओ रामखेलावन चौधरी!'

रामखेलावन खड़े हो गये। वहीं से पूछा, 'क्या है?'

'कहीं जा रहे हो?'

'हाँ!'

'एक पल को सुन लो अगर जल्दी न हो, तो।'

रामखेलावन मचान के समीप आकर खड़े हो गये।

'ऊपर तो आओ। इतनी दूर से कहनेवाली बात न हो, तो?' चन्द्रवदनी मुस्करा रही थी।

रामखेलावन की इच्छा तो थी ही। फिर भी मचान पर चढ़ते हुए उन्होंने भरसक यही दर्शाने का प्रयत्न किया कि उनके आने की इच्छा नहीं है। उनके बैठ जाने पर चन्द्रवदनी बोली, 'उस दिन से तुम गुस्सा हो! इधर-उधर मिलने पर भी कतराकर चले जाते हो। क्या अब बोलोगे नहीं?'

'बोलूँगा क्यों नहीं?' रामखेलावन ने मुँह लटका लिया।

'क्या बोलोगे? जब बुलाने पर नहीं सुनते, तब क्या समझा जाये?' चन्द्रवदनी रस ले रही थी।

'अच्छा, बुलाया किस लिए था? मुझे महरूपुर काम से जाना है।'

'यही पूछने के लिए कि क्या तुम गुस्सा हो?'

'नहीं। बिलकुल नहीं।' चौधरी उठने लगे।

'अगर गुस्सा न होते तो लम्बरदार को मारते क्यों? मेरा गुस्सा तुमने उस बेचारे पर निकाल लिया।'

चौधरी ने कोई जवाब नहीं दिया। उतरने को हुआ।

'अररर....बैठो तो सही। एक बात पूछना तो भूल ही गई थी।'

रामखेलावन ने उसकी ओर देखा।

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। 'मुझसे ब्याह करोगे?' वह धीरे से बोली। चौधरी देखते रह गये। कुछ समझ न सके।

'मेरी तरफ क्या देख रहे हो? जवाब दो न?' वह फिर हँस पड़ी।

'उपहास न कर चनरबदनी! यह सभी जानते हैं कि मेरा ब्याह नहीं हुआ है।' रामखेलावन का मुँह एकबारगी उतर आया। और जब तक चन्द्रवदनी कुछ कहे वह मचान से नीचे आगया। वह अवाक् देखती रह गई। रामखेलावन महरूपुर चला गया। चन्द्रवदनी की आँखें बरस पड़ीं।

लगभग एक घण्टे के उपरान्त चौधरी महरूपुर से लौटे। चन्द्रवदनी ने उन्हें दूर से आते हुए देखा। वह नीचे उतरी और डाँड़ पर आकर खड़ी हो गई। रास्ता वही था। रामखेलावन आया। वह उनके पैरों पर गिर पड़ी। चौधरी ने उसे उठाकर अपने अंकों में भर लिया। थोड़ी देर उपरान्त वह धीरे से बोली, 'बापू से कल बात करने जाओगे ?'

रामखेलावन का मन नाच उठा, 'कल ! आज रात को ही चल दूँगा।' दोनो के ओष्ठ मिलकर एक हो गये।

३५

रामखेलावन उसी दिन रात को चला गया और तीसरे दिन लौट आया। चन्द्रवदनी से भेंट हुई, लेकिन बात करने के लिए उपयुक्त अवसर नहीं था। अतः दोपहर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। दोपहरी बाद वह खेतों के बीच लुकता-छिपता मचान के नीचे जा पहुँचा। चन्द्रवदनी मचान पर खड़ी गुरदेल चला रही थी। रामखेलावन ने नीचे से आवाज दी, 'जाली गुड़ी जाली रे,' चन्द्रवदनी चौंक पड़ी। उसने नीचे को झाँका। रामखेलावन ने आगे कहा, 'बजड़ा के खेत में हमसे लिपटकर मन का भेद बताली रे !'

चन्द्रवदनी अँगूठा दिखाकर बैठ गई। रामखेलावन ऊपर चढ़ गया और उसको गोद में खींचकर बाहुपाशों में जकड़ लिया।

चन्द्रवदनी धीरे से बोली, 'अगर कोई देख ले तो ?' वह अलग हो गई।

'देखकर कोई अब क्या करेगा ? ब्याह तो पक्का हो ही गया।'

'ब्याह पक्का हो गया ! बिना मेरे पूछे ? बड़े आये पक्का करनेवाले।' उसने मुँह बिराया।

'एह....एह ! वहाँ उन लोगों को मेरा निहोरा करते-करते जीभ सूखी जा रही थी और यहाँ तुम अपने में भूली हो। तुम्हारे छकौड़ी भाई तो न मालूम कितनी बार गोड़ पर गिरे और बार-बार यही कहते रहे कि चौधरीजी आपने चनरबदनी का भाग खोल दिया। उसका जीवन धन्य हो गया।'

'तनिक गड़ही में मुँह धो आओ। बड़े सुग्घर हो न? हमारे छकौड़ी भइया इनके पैर गिरेंगे ! क्या कहने हैं ?' दोनो जीवन का आनन्द ले रहे थे।

'पैर गिरेंगे! तुम्हारे बापू ने तो आसीस देते हुए कहा था कि भगवान सब लड़कियों को ऐसा ही वर दे। हजारों में एक हैं रामखेलावन।'

'हजारों में ?' चन्द्रवदनी ने आँखें मटकायीं।

'हजारों में क्यों, लाखों में कहो, लाखों में ! तुम्हारे गाँव से निकलना दूभर हो गया था। जिस लड़की को देखो वही गिरी पड़ रही थी।' वह खिलखिलाकर हँस पड़ा, 'अच्छा, छोड़ो इन बातों को। तुम्हारे बापू तैयार हैं, परन्तु बिना तुमसे पूछे ब्याह नहीं करेंगे। अगर तुम उनसे कह दोगी तो वह इसी लगन में ब्याह कर लेंगे। समय कम है। ब्याह धूमधाम से करने का विचार है। भोंपूवाला बाजा भी बजवाने का मन करता है। अगर तुम दो-चार दिनों के अन्दर अपने गाँव चली जाओ और बात पक्की हो जाये तो तैयारियाँ आरम्भ कर दूँ।' रामखेलावन को बड़ी उतावली थी।

चन्द्रवदनी गम्भीर हो गई, 'इस लगन में ब्याह नहीं होगा।'

'क्यों ?' चौधरी कुछ समझ न सका। उसको आश्चर्य था।

'जल्दी का काम शैतान का होता है। सब कुछ धीरे-धीरे करना चाहिए। अगला साल ठीक रहेगा।' उसकी गम्भीरता वैसी ही थी।

रामखेलावन का हृदय जैसे ऐंठने लगा था। उसका मुँह उतर आया। नीची दृष्टि करके बोला, 'ठीक है। जैसी तुम्हारी इच्छा।' उसकी सारी आशाओं पर तुषारपात जो हो गया था।

चन्द्रवदनी ठट्ठा मारकर हँस पड़ी, 'वहाँ गाँव की सारी लड़कियाँ गिरी पड़ रही थीं और यहाँ एक के ना कहने पर मुँह भरूके की तरह उतर आया। ठेस है कि मर्द हैं और करते-धरते कुछ बनता नहीं।'

चौधरी अब समझे। उसने घूरा। चन्द्रवदनी ने अँगूठा दिखाया और झम से नीचे कूदकर बाजरे के खेत में घुस गई। रामखेलावन भी कूदकर दौड़ा और उसे खेत में पकड़ लिया। दोनो एक-दूसरे के आलिंगन में अपने को भूल गये।

*

लम्बरदार हरिनारायण बड़े घुटे हुए पुराने खुर्राट थे। उनकी चतुराई और कूटनीतिज्ञता का अनुमान लगाना आसान काम नहीं। वह कौन-सा कार्य कब करते हैं तथा किस विचार और मतलब से करते हैं—समझना कठिन है। किन्हीं स्थानों पर जहाँ लोगों के विचार से मर-मिटना कर्त्तव्य होना चाहिए, वहाँ लम्बरदार को बिल्ली बनते देखा गया है और जहाँ कोई आवश्यकता नहीं, वहाँ वह प्रचंड रूप धारण कर लेते हैं। यह रहस्य गाँववाले अभी तक समझ नहीं पाये और नहीं समझने के कारण ही हरिनारायण का उन पर आतंक छाया हुआ था। गरीबों को सताते भी थे और धनिकों से ऐंठते भी थे, खेत भी उखड़वाते थे और खलिहान भी जलवाते थे। कोई काम उनसे बचा नहीं और सिफत यह कि गाँव के हर छोटे-बड़े इसे समझते भी थे। फिर भी गाँव में उन्हीं की तूती बोलती थी। किसी को उनका विरोध करने का साहस नहीं होता। शरीफ़ जलालत के डर से और रजील पेट के भय से—दोनो मजबूरियों के चंगुल में थे।

मार पड़ने के बाद से हरिनारायण में बड़ी गम्भीरता और मधुरता आ गई थी। किसी से बातें करते तो हँसकर। इधर-उधर के प्रसंग चलाकर अपने ऊपर घटाते तथा अपनी त्रुटियों को भी मानते। बहुत-सी ऐसी भी चीजें कर जाते जिसके वह अभ्यस्त नहीं और न किसी को ऐसी आशा ही होती। यह थी उनकी दिनचर्या, परन्तु रात्रिचर्या में उनका

रूप बड़ा भयंकर हो जाता था। अँधेरा होते ही वह घर से निकल पड़ते। विशेष व्यक्तियों से विशेष प्रकार की बातें करते, फिर थाने पहुँच जाते। बड़ी रात गये तक अकेले में दारोगाजी से बातें होती रहतीं। कभी-कभी इनकी गोष्ठी में महावीरलाल और रामधारी अहीर भी होते।

कुछ दिन पहले किसी गाँव की डकैती में दारोगाजी ने एक किसान को रुपया ऐंठने की गरज से फाँस लिया था। संयोग से दारोगाजी के खास-खास गवाह रामखेलावन के मिलनेवाले निकल आये। वह किसान रोता-काँपता रामखेलावन के पास आया और सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। रामखेलावन को दया आ गई। उसने गवाहों को भड़का दिया। फलस्वरूप दारोगाजी का मुकदमा बिगड़ गया। पैसा भी नहीं मिला और किसान भी छूट गया। दारोगाजी जहर का घूँट पीकर रह गये।

बात बिगड़ती है तो बिगड़ती ही चली जाती है। इसी प्रकार इधर कुछ दिनों में दो-एक ऐसे मामले उलझे, जिसमें दारोगाजी को सदैव मुँह की खानी पड़ी। दारोगाजी की जो बदनामी हुई सो तो अलग, ऊपर से डाँट भी पड़ी। रामखेलावन दारोगाजी के लिए आँख का काँटा बन गया।

'हरिनारायणजी!' रात की निस्तब्धता में दारोगाजी ने कहा, 'रामखेलावन सारे हलके को बरबाद कर देगा। अगर यही दशा रही तो मिलना-जुलना दूर, नौकरी से भी हाथ धोना पड़ेगा।'

'मैंने हुजूर से बहुत पहले अर्ज किया था। इसका कुछ-न-कुछ प्रबन्ध होना ही चाहिए। यह दो-मुँहा साँप है, साँप!'

दारोगाजी कुछ क्षण सोचते रहे, तदुपरान्त उन्होंने धीरे से हरिनारायण के कान में कुछ कहा।

हरिनारायण ने सिर हिलाया, 'ऊहूँ! कुछ और। इससे काम नहीं बनने का। मामला जहाँ है वहीं रह जायेगा।'

दारोगाजी फिर सोचने लगे।

३६

सन्ध्या को जमादार साहब की बोतल खुल गई और वह अपने जेल की पुरानी स्मृतियाँ बतलाने लगे। आचार्य, नन्दा और चाचीजी सुन रही थीं। जगदीश किसी के यहाँ विवाह में मतजीपुर गया था। कल लौटेगा।

अनायास आचार्य को कुछ स्मरण हो आया, 'आपके सामने कभी योगेन्द्र शुक्ल भी जेल में थे बाबूजी ?' उन्होंने पूछा।

'कौन योगेन्द्र शुक्ल ?' उन्होंने गिलास को खाली कर दिया। 'अच्छा, आपका मतलब है क्रान्तिकारी योगेन्द्र शुक्ल से ?'

'जी हाँ !'

जमादार साहब मुस्कराये, 'उन्हीं की वजह से तो मुझे प्रोमोशन मिला था। बड़ा जमादार से नायब जेलर हुआ।' उन्होंने गिलास से उड़ेली और गट-गटकर के पी गये। भोला हुक्का चढ़ाकर ले आया। वे दो-तीन कश खींचकर बोले, 'यह सन् बीस या बाइस की बात है। मैं बक्सर में था। बिना सान-गुमान के एक दिन मेरे तबादले का हुक्म आ गया और दो दिन के भीतर-भीतर मुझे छपरा जेल का चार्ज ले लेना था। छपरा जेल बम केस के कैदियों और काँग्रेसियों से भरा पड़ा था। परिस्थिति देखकर बड़ी घबड़ाहट हुई, लेकिन मेरी बदली हुई थी उस काम को सँभालने के लिए। खैर, चार्ज लेने के बाद चार-छह दिनों तक जेल के वातावरण को समझता रहा। फिर आपके योगेन्द्र शुक्ल से भेंट की। देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि योगेन्द्र शुक्ल ऐसे क्रान्तिकारी कैदी को वहाँ हर तरह की छूट थी। वह जेल के भीतर कहीं भी घूम सकते थे। सिर्फ उनकी निगरानी के लिए एक कैदी उनके साथ-साथ रहा करता था। खैर, शाम को मैंने जेलर साहब से बात की। योगेन्द्र शुक्ल को तनहाई में रखने की सलाह दी।

'जेलर साहब बड़े ताज्जुब में होकर बोले—क्यों ?

'मैंने कहा—अगर उन्हें आप तनहाई में नहीं बन्द करते तो मेरी और आपकी नौकरी खतरे से खाली नहीं।

'उन्होंने पूछा—क्या मतलब ?

'मैंने कहा—वह किसी भी दिन जेल से निकल सकते हैं।

'जेलर साहब हँसने लगे और मुझे इधर-उधर की बातें समझाकर इस मसले को टाल दिया। मुझे चुप हो जाना पड़ा। एक हफ्ते बाद एक दिन सवेरे साहब के चले जाने के बाद जब मैं भी बाहर निकलने के लिए चला तो गोदाम के पास शुक्लजी मिल गये। मैंने प्रणाम किया। वह खड़े हो गये। बोले—मुझे आप शर्मिन्दा करते हैं जमादार साहब।

'मैंने कहा—क्यों शुक्लजी ?

'उन्होंने कहा—इसलिए कि पहले मुझे नमस्ते करने का अवसर दिया करें। मैं छोटा हूँ और आप बड़े हैं।

'मैंने कहा—पर ईश्वर के घर से तो आप बड़े बनकर आये हैं। उम्र में छोटे होने से क्या होता है ?

वह हँसने लगे। मैं चलने को हुआ तो उन्होंने फिर बात चलाई—सुना है आपकी लड़की का विवाह है ?

'गोपाल बाबू, मैं उनकी तरफ आश्चर्य से देखता रह गया। मुझे बड़ी लड़की की शादी करनी थी और इसके लिए मैं उन दिनों चिन्तित भी था। मैंने उनसे कहा—हाँ शुक्लजी, विवाह तो करना है। देखिए भगवान किसी प्रकार उद्धार कर दें, तब है। आप तो समझते ही हैं इसी छोटी नौकरी से सब करना-धरना है।

'उन्होंने "सब हो जायेगा। भगवान का भरोसा रखिए"—कहकर मुझसे आज्ञा ली। उस दिन से नित्य शुक्लजी किसी-न-किसी बहाने मिलकर मुझसे कुछ बातें अवश्य कर लेते। मैं भी उनसे घुल-मिलकर हर प्रकार की बातें करता, लेकिन मेरी निगरानी धीरे-धीरे उन पर बढ़ने लगी। पता नहीं क्यों, मेरा मन बार-बार यही कहता था कि यह आदमी अधिक दिनों तक जेल में रुकने का नहीं।'

जमादार साहब ने संकेत किया। भोला ने गिलास भरा। वह पी गये और बोले, 'अन्दाजन एक महीने के बाद एक दिन शुक्लजी ने अकेले में मुझसे कहा—एक बात आपसे कहनी थी जमादार साहब।

'मैं उनकी ओर देखने लगा। वह कुछ धीरे से बोले—बहन के विवाह हेतु पाँच हजार रुपयों का प्रबन्ध करा दिया है, जिस दिन कहिए मँगवा दूँ।'

'सच मानिए, मैं बिलकुल सन्नाटे में आ गया, लेकिन क्या बतायें, मेरी बुद्धि ने बड़ी सतर्कता बरती। मैंने झट से कह दिया—ठीक है शुक्लजी। आपकी इच्छा ईश्वर चाहेगा तो पूरी हो जायेगी।

'योगेन्द्र शुक्ल कुछ और सट आये—थोड़ी-सी निगाह हटाने की आवश्यकता है। मेरे लिए मठिया के पास चौबीसों घंटे एक मोटर प्रतीक्षा करती रहती है। सब काम मिनटों में होगा। आप भी बचे रहेंगे।

'मैंने उनको यह कहकर विदा किया—ठीक है! ठीक है! इसके लिए मैं आपको दिन और समय बतलाऊँगा। जल्दबाजी करने की जरूरत नहीं। काम आपका हो जायेगा। शाम को सारी बातें जेलर साहब से बतलाईं। वह दाँतों-तले उँगलियाँ दबाने लगे।

'खैर, और कुछ तो करना उचित नहीं समझा। मैंने जेलर साहब से लिखाकर शीघ्र योगेन्द्र शुक्ल को हजारीबाग भेजने की आज्ञा माँगी। उधर मैं शुक्लजी को आजकल-आजकल करके हुक्म की इन्तजारी करने लगा। पन्द्रह दिनों के अन्दर हुक्म आ गया और योगेन्द्र शुक्ल हजारीबाग भेज दिये गये। लेकिन गोपाल बाबू, वहाँ महीना भी नहीं पूरने पाया था कि शुक्लजी जेल के बाहर हो गये।'

'क्या जेल से निकल गये?' आचार्य ने आश्चर्य से देखा।

'बिलकुल गेट से और सिपाही बनकर। पर एक बात आपको बताऊँ, जो बरसते हैं वह गरजते नहीं—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अगर किसी को ढूँढ़ना हो तो जाकर शुक्लजी से मिले। शायद आपने देखा हो या नहीं, पर जितना सुन्दर और लम्बा-चौड़ा, हृष्ट-पुष्ट वह पुरुष

है उतनी ही उसके अन्दर शालीनता, सज्जनता और सभ्यता भी है। कोई भी व्यक्ति उससे मिलकर यह अनुमान नहीं लगा सकता कि इतनी शान्त प्रकृति का व्यक्ति इतना बड़ा क्रान्तिकारी भी हो सकता है।' जमादार साहब ने भोला की ओर गिलास बढ़ाया।

'बस ! अब काल। खाना खाये के जून हो गइल। रात-भर ईहे थोड़े होई।' भोला ने गिलास लेकर बातल हटा ली।

जमादार साहब हँसने लगे, 'अच्छा भाई, जौन तोर हुकम हो।'

भोला अभी बारह-तेरह वर्ष का लड़का था। जमादार साहब ने उसे अपने बेटे की भाँति पाला था। भोला का बाप हरदेव उसे बचपन में छोड़कर मर गया था।

सब लोग खाने पर उठ गये।

भोजन के उपरान्त आचार्य आकर बैठक में लेट रहे। थोड़ी देर बाद नन्दा आई। किवाड़ बन्द किये और लालटेन उठाकर चलने लगी तो वह बोले, 'कहा जाता है कि दस वर्ष के बाद घूरे के दिन भी फिरते हैं परन्तु....'

'दस वर्ष होने भी तो दीजिए। अभी पहला वर्ष भी आरम्भ नहीं हुआ।' नन्दा मुस्कराई और कुर्सी खींचकर पलंग के समीप बैठ गई।

'तुमसे एक बात बतलायी ही नहीं। परसों मधुकर आया था और....'

'मधुकर आया था ! यहाँ ?'

आचार्य मुस्कराये, 'मधुकर तो कई बार आ चुका है नन्दा।'

'कई बार आ चुका है ! क्या पहेली बूझते हैं ?'

'पहेली नहीं बूझते। वह यहाँ नहीं, जगदीश के स्कूल पर आता है। बम्बई से सब लोग आ गये हैं। अच्छी तरह हैं। भाभीजी ने तुम्हें आशीर्वाद कहलाया है।'

'वीरेश बाबू के विषय में भी मधुकर कुछ बतला रहा था ?'

'नहीं ! सिर्फ इतना जरूर कह रहा था कि हमारे-तुम्हारे आने के उपरान्त फिर वह बम्बई में किसी कार्यकर्ता को दिखलाई नहीं पड़े।'

'कोई बड़ी बात नहीं। ग्लानि की चरम सीमा सभी कुछ करा सकती है।'

'भाभीजी ने कुछ और कहलवाया है ?'

'भाभीजी ने तो नहीं, किन्तु मैंने कहलवा दिया है।'

'क्या ?' नन्दा की बड़ी-बड़ी आँखों ने भेद जानना चाहा।

'यही, अपने और तुम्हारे विषय में।' आचार्य के मुख पर बनावटी गम्भीरता थी।

'मेरे और अपने विषय में ?'

'अरे भई, भाभीजी ने सविस्तार पूछा था इसलिए बतलाना पड़ा।'

'तो आपने क्या बतलाया ?'

'बतलाता क्या ! जो तुमने सिर में लगा रखा है उसी के अनुसार बतला दिया।'

नन्दा ने गरदन मटकायी, 'लगाने से क्या होता है ? कोई वास्तविकता थोड़े है। विवशता-वश ऐसा करना पड़ा।'

'और इसी विवशता ने सत्य का रूप धारण कर लिया है।'

'चलिए !' नन्दा उठने को हुई।

आचार्य ने हाथ पकड़ लिया, 'बोलो नन्दा, अब क्या निश्चय किया है ?' आचार्य की आवाज बदल गई थी।

नन्दा ने सिर झुका लिया, 'निश्चय अब आपको करना है। मेरा निश्चय बहुत पहले से विदित है।' नन्दा के कथन में बहुत-से अर्थ थे। उसने धीरे से हाथ खींच लिया। लालटेन उठाया और अन्दर चली गई।

आचार्य बड़ी रात तक करवटें बदल-बदलकर सोचते रहे।

३७

शुभ दिन में निश्चित तिथि पर रामखेलावन और चन्द्रवदनी का पाणि-ग्रहण बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुआ। अंग्रेजी बाजा भी बजा और भोंपू-वाला बाजा भी बजा। लड़की पक्ष की ओर से स्वागत-सत्कार में कोई कसर न उठा रखी गई। दो दिन बारात रुककर तीसरे दिन दुलहिन सहित लौट आई। उसी दिन सन्ध्या को रामखेलावन ने अपने घर पर गुति-यानईया के भोजन का आयोजन किया। ठेकुआ और सोहारी तथा मसालेदार तरकारी की चरपराहट से अतिथियों को भोजन से पूर्ण तृप्ति मिली। फिर सजाव दही चला। लोगों ने खूब छककर खाया। राम-खेलावन की तरफ से कोई रोक नहीं थी। ऐसा अवसर जीवन में दुबारा थोड़े आने को था। रामखेलावन के प्रत्येक कार्य की बड़ी सराहना की गई। वह प्रसन्नचित्त सब से आशीर्वाद लेता रहा।

पुरुषों को खिलाने-पिलाने के उपरान्त स्त्रियों की बारी आई। रात काफी हो चुकी थी। अतः रामखेलावन यह भी काम जल्दी निबटा देना चाहता था। परन्तु औरतों की घिसघिस और न अन्त होनेवाली बातों में वह हस्तक्षेप तो कर नहीं सकता था; कारण स्त्रियों के मामलों में पुरुषों का क्या दखल ! रामखेलावन क्षण बाहर क्षण भीतर आवाजाही लगाये हुए था। परन्तु कुछ कह नहीं पा रहा था। चन्द्रवदनी उसकी व्यग्रता भाँप रही थी और कभी कभी कनखियों से देखकर मुस्करा देती थी।

गुदिया चन्द्रवदनी की सहेली थी और अब गाँव के रिश्ते से चन्द्र-वदनी उसकी भौजी हो गई थी। गुदिया का गौना पिछले वर्ष हुआ था और अभी दो महीने पूर्व वह ससुराल से आई थी। इसलिए उसकी स्मृतियों में वह सभी कुछ था जो रामखेलावन को इस समय बेचैन कर रहा था। वह मुस्कराती हुई ऊँचे स्वर में बोली, 'जल्दी-जल्दी सब लोग खाओ-पिओ भाई। क्या भिनसार कर दोगी ! भौजी बेचारी को अभी

रात ही में कितने काम निपाटने हैं।' सब हँसने लगीं। वह चन्द्रवदनी के पास धीरे से जाकर बोली, 'देख रही है, हमारे भइया कितने बेकल हैं ? सँभल के मिलना। अखाड़े के पहलवान हैं, पहलवान।'

'तेरे भी तो पहलवान हैं। तू अपनी क्यों नहीं कहती ? सुना है कि तू उनके कमरे से भाग-भाग आती थी ? क्यों, भागी थी या नहीं ?'

'चल-चल। वह क्या हमें भगायेगा। खुद भाग गया था। बड़ी आई है पच्छ करने। तू अपनी देख। कल आऊँगी तो पूछूँगी।' वह चिकोटी काटकर हँसती हुई चौके में चली गई और पूरियाँ लाकर परोसने लगी।

थोड़ी देर में रामखेलावन फिर आया। उसने संकेत से चन्द्रवदनी को कोठरी में बुलाया। वह आँखें बचाकर आई।

'क्या है ?' उसने डाँट बतलायी।

'रात-भर बस खाना-पीना ही होता रहेगा ?'

'तुम्हें क्यों चिन्ता है, जाकर सोओ। सब काम....'

रामखेलावन ने बीच में टोका, 'बाहर या भीतर ?' वह मुस्कराया।

'बाहर। जहाँ सब दिन सोते रहे। भीतर क्या रखा है ?'

'ठीक है, बाहर ही जा रहा हूँ, पर कल गाँव की औरतें पूछेंगी तो क्या जवाब दोगी ?'

चन्द्रवदनी लजा गई। 'चलो हटो। इस गाँव के लोग बड़े मुँहफट हैं।' वह जाने लगी।

'अररर....!'

वह रुक गई, 'कुछ कहना है ? देखते नहीं आँगन में कितनी औरतें हैं ?'

'भगेलू को नदी तक पहुँचाने जा रहा हूँ। जल्दी ही लौटूँगा। तब तक....।'

'उन्हें रोक क्यों नहीं लेते ? कल चले जायेंगे।'

'कहा तो था पर मानता नहीं है। अभी भेजकर आया।'

'दूर न जाना। जल्द ही लौटना।'

रामखेलावन मुस्कराया, 'पर जल्दी लौटकर क्या होगा ? सोना तो बाहर ही है ?'

'जाओ! जाओ!' चन्द्रवदनी आँगन में चली गई।

भगेलू और रामखेलावन की पाठशाला की मित्रता है। नदी-पार सामनेवाले गाँव में वह रहता है। यद्यपि रामखेलावन का पहुँचानेवाला शिष्टाचार भगेलू को पसन्द नहीं आया, परन्तु उसकी जिद से भगेलू को चुप होना पड़ा।

गाँव से निकलते ही दोनो साथियों में चन्द्रवदनी को लेकर कुछ ऐसी रसभरी बातें होने लगीं कि रामखेलावन को ध्यान ही न रहा कि वह कहाँ तक आ गया है। अचानक कुत्तों की आवाज सुनकर वह रुका। सामने गाँव था।

'अरे, बड़ी दूर निकल आये यार!'

भगेलू ने सिर उठाकर देखा, 'लौटो। लौटो। तुम तो मेरे गाँव तक चले आये।'

रामखेलावन लौटा। 'और हाँ,' भगेलू ने उसे रोककर कहा, 'आज पहला दिन है। जरा ध्यान से....'

'अपना अनुभव बतला रहे हो ?' दोनों हँसते हुए एक दूसरे से विदा हुए।

रामखेलावन लम्बे-लम्बे डग रखता हुआ बढ़ा। नदी पर बनी हुई बाँसों की पुलिया को पारकर वह उस बड़े पीपल के वृक्ष के नीचे आया ही था कि किसी ने ऊपर से उसकी पीठ में भाला मारा। पहलवान गिरते-गिरते सँभला। तब तक दूसरा भाला दाहिनी कोख में और तीसरा बायीं में। सारी अँतड़ियाँ बाहर निकल आईं। मुँह से आह तक न निकली और रामखेलावन पृथ्वी पर गिर पड़ा। जीवन की लालसाएँ मन में ही रह गईं।

दारोगाजी ने अपनी कर ली।

३८

आचार्य ने अचरजपूर्ण नेत्रों से जगदीश की ओर देखा, 'कोई खबर मिली है ?'

'हाँ! तहसील में आज कुछ ऐसी ही बातें हो रही थीं। शायद नन्दा की हुलिया भी रघुनाथराव ने हर जगह भेज दी है।'

'हूँ।' आचार्य सोचने लगे।

'अब....?'

'कल तुम्हारा गाँव छोड़ दूँगा।'

'किन्तु अभी ऐसी जल्दी....'

'तुम्हारी खबर सही है जगदीश। अब यहाँ एक दिन भी रुकना खतरे से खाली नहीं। जरा नन्दा को बुलाओ।'

जगदीश नन्दा को बुला लाया।

*

दूसरे दिन आचार्य ने नन्दा सहित राजापुर छोड़ दिया। चौथे दिन सन्ध्या को आचार्य और नन्दा महोबा पहुँचे। शहर में आकर कुछ जलपान हुआ और फिर जंगल के उस परिचित मार्ग पर चल पड़े। जिस समय ये लोग पहुँचे झोपड़ी में मधुकर नहीं था। दोनो अन्दर होते हुए ऊपर जा पहुँचे। भाभीजी, दिनकर तथा मधुकर किसी विशेष समस्या पर विचार-विमर्श कर रहे थे। अचानक नन्दा और आचार्य को सामने देखकर उन्हें अपनी आँखों पर धोखा होने लगा। भाभीजी ने झपटकर आचार्य को गले से लगा लिया और उनके नेत्रों से प्रसन्नता के आँसू बहने लगे।

सब लोग बैठे। इतने में वीरेश ऊपर से उतरता हुआ दिखलाई पड़ा। 'वीरेश !' आचार्य के चेहरे का रंग एकबारगी बदल गया। नन्दा ने देखा और सन रह गई।

भाभीजी मुस्कराईं, 'उसने अपनी त्रुटि मान ली है। परसों आया है।'

आचार्य ने उठकर उसे गले लगाया।

'मैं अपनी गलती के लिए....' वीरेश के रुँधे कंठ से शब्द नहीं निकल रहे थे।

'मनुष्य देवता नहीं है वीरेश! गलती कैसी?' आचार्य ने उसे बिठलाया।

नन्दा भाभीजी को लेकर दूसरी ओर चली गई।

आचार्य ने मधुकर से बम्बई की हड़ताल के विषय में सविस्तार पूछना प्रारम्भ किया। बहुत रात गये लोग भोजन के लिए उठे, पर आचार्य ने भोजन से अनिच्छा व्यक्त की और अधिक थकान का कारण बतलाकर ऊपर सोने चले गये।

*

भोजन के उपरान्त जब वीरेश ऊपर पहुँचा तो आचार्य सो रहे थे। वीरेश ने जगाना उचित नहीं समझा। फिर उसकी इच्छा नीचे जाकर नन्दा से बातें करने को हुई। वह नीचे उतरने को बढ़ा, परन्तु उसके पैर ठिठक गये। सोचा, सम्भवतः वह बातें करना पसन्द न करे। उसने नीचे जाना उचित नहीं समझा। वह फिर पड़ रहा। सोने का प्रयास किया। इधर-उधर करवटें बदलीं; परन्तु नींद कैसे आती, नन्दा जो विचारों में उथल-पुथल मचा रही थी। विवश होकर उसे उठना पड़ा। वह नीचे आया, पर बेकार। नन्दा सो चुकी थी। वह लौटकर कुछ देर सोचता-सोचता सो गया।

*

लगभग दो का समय होगा। चाँदनी टहक रही थी। आचार्य उठे और नीचे से कागज और कलम लाकर लिखने लगे :

"प्रिय वीरेश,

"आज तुमसे अलग होते हुए जो दुःख हो रहा है उसे बतलाने से क्या लाभ? परन्तु विवशता है। ऐसा किये बिना काम नहीं चल सकता। पार्टी की पूरी जिम्मेवारी अब तुम्हारे कन्धों पर है। केवल यही एक वस्तु

अपने पास देने को शेष रह गई थी। अब मैं स्वतन्त्र और जिम्मेवारियों से बरी हूँ। मैं क्या करूँगा और किधर जाऊँगा—निश्चित नहीं, किन्तु इतना विश्वास दिला सकता हूँ कि यदि जीवित रहा तो देश स्वतन्त्र होने पर तुमसे मिलूँगा। अधिक क्या लिखूँ ? तुम मुझे फिर मिल गये, यही मेरे लिए सब-कुछ है। अब अलग न होना, वरना मैं कहीं का न रहूँगा।

"प्रत्येक कार्यकर्ता को मेरी ओर से बतलाना कि यद्यपि अब मैं उनके बीच नहीं हूँ, परन्तु मेरा मन सदैव उनके साथ रहेगा। उनका प्रगाढ़ प्रेम मेरे पास धरोहर के रूप में सुरक्षित है।

"अन्त में यह भी बतला दूँ कि नन्दा तुम्हारी है और यदि तुम उसे जीवनसंगिनी बना सको तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी।

"भाभीजी को चरण-स्पर्श।

तुम्हारा—गोपाल"

*

नंगे बदन, केवल कमर में एक मोटा अंगौछा लपेटे हुए, बड़े-बड़े बालोंवाला वह व्यक्ति जिस गाँव में रुककर अपनी बाँसुरी फूँक देता है, गाँव के नर-नारी उसके वश में हो जाते हैं। परन्तु वह किसी भी गाँव में दो-तीन दिनों से अधिक नहीं टिकता। वह बाँसुरी सुनाता है, फिर लोगों से सुनता है और अन्त में कुछ अपनी सुनाता हुआ दूसरे गाँव के लिए प्रस्थान कर देता है।

इस पैदल पथिक की यात्रा कब समाप्त होगी, कौन कह सकता है!

—:o:—

हमारे अन्य उपन्यास

रमणलाल देसाई

मेरी पति विजय : ६·००

प्रलय : ५·५०

बालाजोगन : ६·००

पहाड़ के फूल :

रामचन्द्र ठाकुर

आम्रपाली : ४·५०

बीरबल : ४·५०

मीरां प्रेम दीवानी : ५·००

कुमुद सक्सेना

आग जो बुझी नहीं : ३·७५

कृष्णचन्द्र

बावन पत्ते : ५·५०

एक लड़की और
हज़ार दीवाने :

उमाकान्त

नर्तकी : ५·५०

शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय

अमरनाथ : २·५०

परदेशी

भगवान बुद्ध की
आत्मकथा : ४·००

मामा वरेरकर

सर्व मंगला : ३·००

ईश्वर पेटलीकर

काला पानी : ३·००

कश्मीरीलाल ज़ाकिर

सिंदूर की राख : ३·००

रतिलाल त्रिवेदी

नया रास्ता : ३·७५

प्रेमा कंटक

काम और कामिनी : ६·००

वोरा एण्ड कम्पनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउन्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई २.